"कला के सम्बन्ध में हमारी क्या राय है, यह महत्वपूर्ण नहीं है। और न यही महत्वपूर्ण है कि कला हमारे विशाल देश के सौ-पचास लोगों को क्या देती है। कला का सम्बन्ध जनता से है। उसकी नींव मज़दूरों के विस्तृत समाज में होनी चाहिये। वह (कला) ऐसी होनी चाहिये कि वे उसे समझें और प्यार कर सकें।

जब किसानों और मज़दूरों के विशाल समाज को रोटी का एक काला टुकड़ा भी खाने को न मिले, तब क्या हमें चन्द लोगों के लिए माखन-मिसरी जुटाने की व्यवस्था करनी चाहिये? कहीं तुम इस के शाब्दिक अर्थ को ही मत ले लेना, मैं एक रूपक के तौर पर कह रहा हूँ। हमें सदा किसानों और मज़दूरों को ही अपने सामने रखना चाहिये—कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी।"

—लेनिन

सामयिक - साहित्य - माला—तीसरा पुष्प

तमसा

विवशता और वैषम्य-सर्जित
दुख-द्वन्द्व की करुण कहानी

रचयिता
श्री रामेश्वर 'करुण'

प्रकाशक
सामयिक साहित्य-सदन
लाहौर

'तमसा' पर प्रकाश

'करुणा' जी की 'तमसा' पर प्रकाश डालते हुए मुझे हार्दिक हर्ष हो रहा है। आज से नौ वर्ष पहले योरोप जाते समय रेलगाड़ी में मैंने 'करुणा' जी की "करुणा—सतसई" पर प्रस्तावना लिखी थी। उस समय मेरा हृदय पश्चिम की ओर देख रहा था, जिस के एक बड़े भूभाग में सत्य का सूर्य्य तमतमाता हुआ अभी हाल ही में निकला था। जैसी कि आशा थी, सत्य का वह सूर्य्य अपनी जगमगाहट द्वारा विश्व के तम-तोम को छिन्न-भिन्न करता चला आ रहा है। सोवियत रूस की इस विजय-बला में साम्यवादी विचारों से ओतप्रोत पुस्तक 'तमसा' मानवता के कल्याण का एक उच्चतम आयोजन है।

इस पुस्तक का नाम, इस में अंकित कविताओं के शीर्षक, और इस सारी कृति का तौर-तेवर, एक स्थिति-विशेष, एक अनुभव-विशेष, एक भाव-विशेष के द्योतक हैं। किस प्रकार एक व्यक्ति समाज का प्रतिबिम्ब होने के साथ उस का उद्धारक भी हो सकता है, यह देखिए। 'तमसा' के कवि रामेश्वर 'करुण' अन्धकार में उत्पन्न हुए। उन्हें इसका अनुमान हो गया कि वे तमस में उत्पन्न हुए हैं। तब वह 'कहाँ कहाँ' क्यों करते? उन्होंने हाहाकार किया। इस हाहाकार का अर्थ यदि कोई न समझ सके, तो कहना पड़ेगा कि वह हिन्दोस्तान की धाँधली-धूसरित धरती पर नहीं रहता है, बल्कि अपनी विलासी कल्पना द्वारा निर्मित कञ्चनवर्णी परीमहल में निवास करता है। दरिद्रता और निरक्षरता के एक प्रतिनिधि परिवार में इस भभकती पुस्तक के 'अग्निशर्मा' का जन्म हुआ। उनकी हुंकार, उनका गर्जन-तर्जन सुनिए—

वह आग उठे अम्बर में
यह अग्नि-गान सुन मेरा,
धू-धू कर जल जल जाये
दुनिया का द्वन्द्व घनेरा।

कोई न धनी रह जाये
कोई न दरिद्र दिखाये,
'जो काम करे सुख भोगे'
यह स्वर्णिम नियम बन जाये।

श्रमकार - कृषक की जय हो
समता की विश्व - विजय हो,
सम्राटों की कब्रों पर
पूँजीपतियों का क्षय हो।

मैंने 'करुणा' जी की 'करुणा-सतसई' के सम्बन्ध में कहा था कि ऐसे ही साहित्य से उस विद्युत - शक्ति का प्रादुर्भाव हो सकता है जो जनता के मस्तिष्क और मन में साम्यवाद का विप्लव पैदा कर दे। 'तमसा' पर प्रकाश डालते हुए मैं अपने उन शब्दों को आज यहाँ दोहराता हूँ।

'करुणा - सतसई' की बोली खड़ी नहीं थी—पड़ी थी, जैसे:—

सौ बातन की बात इक
बादि करै को तूल,
है इक रोटी - प्रश्न ही
सब प्रश्नन कौ मूल।

'तमसा' में यही बात 'करुणा' जी ने खड़ी बोली में कही है:—

सब प्रश्नों का परदादा
यह रोटी - प्रश्न अकेला,
नित सब को नाच नचाता
हो आप गुरू या चेला।

× × × ×

'करुण' - सतसई के प्रकाशन - काल में हिन्दोस्तान की जनता साम्यवाद के सम्बन्ध में अत्यधिक अनजान थी। प्रायः लोग पूछा करते थे कि साम्यवाद किस खेत का बथुआ है ? कम्युनिज़्म किस चिड़िया का नाम है ? विश्वव्यापी इस युद्ध में सोवियत रूस ने वह करिश्मा कर दिखाया है कि हिन्दुस्तान की ही नहीं, सारे जगत की मूढ़ता मिट गई है। सब को पता चल गया है, कि साम्यवाद उस खेत का बथुआ है जिसका विस्तार संसार के विस्तार से मिलता है, और कम्युनिज़्म उस चिड़िया का नाम है जिसके पंखों के नीचे विश्व ब्रह्मांड के सम्पूर्ण प्राणी अनन्त काल तक अक्षुण्ण सुख-शान्ति भोगेंगे।

जर्मनी ने जिस समय सोवियत पर प्रहार किया था, उस समय बड़े बड़े 'बुद्धिमान और विचारवान' तक मुँह बना कर कह रहे थे कि साम्यवाद का दुर्ग तीन महीने से अधिक खड़ा नहीं रह सकता। किन्तु उनका वह कथन सर्वथा हास्यास्पद सिद्ध हुआ। निरंतर तीन साल तक हिटलरी हुमक और हुमच के बाद भी आज तक वह दुर्ग सदर्प खड़ा है। और सदर्प खड़ा ही नहीं है, उसमें से निरंकुशता को ध्वंस करने वाली चिंघाड़ती दहाड़ती शक्ति निकल कर अपने सुखशाली शासन का विस्तार कर रही है। कल योरोप में छा कर परसों वह सारे संसार में छा सकती है। 'करुण' जी के शब्दों में;–

वह साम्यवाद बलशाली
वह बीस बरस का बच्चा,

नाज़ी-दल के दानव को
खा गया चबाकर कच्चा।

सदियों के 'सिंह' सयाने
इस का मुँह ताक रहे हैं,
यह 'भालू' बढ़ते आते
वह बगलें झाँक रहे हैं।

दुनिया से दूर करेंगे
यह राज-तन्त्र दुखदायी,
समता के भाव भरेंगे—
इनकी यह क़सम,खुदायी।

सोवियत की यह 'क़सम 'खुदायी' पूरी होगी, इसके चिह्न भी तो यत्र, तत्र—सर्वत्र दिखलाई दे रहे हैं। योरोप में ही नहीं, अन्य देशों में भी राजनैतिक और आर्थिक विषमताएँ, युद्ध के दबाव के कारण, समाज-संगठन में अब और भी बड़ी बड़ी दरारों की तरह दिखलाई दे रही हैं। नंगी जनता अब और भी नंगी हो गई है—भूखी जनता और भी भूखी हो गई है। फिर भी शोषकों की शोषण-लिप्सा बढ़ती ही जाती है। खाद्य-पदार्थों का नियमित वितरण, नित्य-प्रति के व्यवहार की वस्तुओं का मूल्य-नियंत्रण—आदि ऊपर की लीपापोती है। पूँजीवाद का विकार इन उपचारों से नहीं मिट सकता। 'तमसा' का कवि इस विकार का उपचार करने के लिए यों कहता है—

जब तक 'श्रम' और 'उपज' का
होता सम भाग नहीं है,
बल कर क्यों व्यर्थ बुझाते
बुझती यह आग नहीं है।

हड़ताल, अकाल, और काल के कराल गाल में पड़े हुए प्राणी कहते हैं---सोवियत की विजय से वर्तमान काल की गुत्थी ही न सुलझजायगी, भविष्यत् की समस्या भी हल हो जायगी। अब तो नये रक्त में ही नहीं, पुराने रक्त में भी हरारत पैदा हो गई है। घरों में बैठे हुए, या बन्दी-गृहों में बन्द, थके-माँदे, पुराने लकीर के फ़कीर राजनैतिक कार्य-कर्त्ता भी साम्यवादी साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं।

साम्यवादी साहित्य का अध्ययन कोई व्यसन या फ़ैशन नहीं है। ऐसा होता तो महात्मा गांधी इसमें लिप्त न होते। कहते हैं, आज कल वह मार्क्स के सिद्धांत और सन्देश का मनन कर रहे हैं। कौन विचारशील विद्वान् अथवा जाग्रत जिज्ञासु उनका मनन न करेगा।

मार्क्स ने पूँजीवाद के गर्भ में उस के नाश का बीज देखा और सब को दिखा दिया। उन्हों ने कहा---यह घोर अन्याय है कि अगणित आदमी मिलों और कल-कारखानों, खेतों और खानों में अपना पसीना पानी की तरह बहाकर अतुल सम्पत्ति पैदा करें, और

इस सम्पत्ति को, उस उपज को, मुट्ठी भर मनुष्य अपनी आपा-धापी के द्वारा हड़प कर लें। यह घोर अन्याय तो है ही, समाज के लिए हलाहल विष भी है। इस व्यक्तिगत लाभ को शासन का सिद्धांत बनाने वाली योजना ही तो विश्वव्यापी बेकारी, दरिद्रता और दुःख-दुर्गुण का मूल कारण है। मार्क्स ने सत्य की व्याख्या इस प्रकार की—"सम्पूर्ण पदार्थों के निर्माण के साधन और उनके द्वारा उत्पन्न उपज–दोनों ही समाज की सम्पत्ति हैं। और पूँजी-पतियों का अस्तित्व एक भयंकर व्याधि है, जिसको निर्मूल करके श्रमकारों का शासन स्थापित करना ही संसार के लिए श्रेयस्कर है।" 'करुण' जी ने कितनी सरलता के साथ एक छोटे से छन्द में इस सिद्धांत का समावेश कर दिया है:—

'सुख-साधन श्रमिक सँभालें
श्रम-हीन न सुविधा पायें,'
सच्चे सुधार की बातें
बस दो ही हमें दिखायें।

ठीक तो है। शताब्दियों तक वैज्ञानिकों और अविष्कार-कर्त्ताओं के मरने-खपने के बाद, जिन चमत्कारिक शक्तियों की सृष्टि हुई, उन पर चोर-लुटेरों ने अपना आधिपत्य जमा लिया, उनको अपने वैभव की वृद्धि और वासना की सिद्धि का साधन बना लिया। 'करुण' जी उन की भर्त्सना करते हुए कहते हैं—

गुल गुले गदेले दलकर
तुम बने फिरो गुल्लाला,
हम अपना रक्त सुखाकर
नित करें कलेवर काला।

लेनिन ने मार्क्स के स्वप्न को क्रान्ति की सहायता से वास्तविकता में परिणत करके ज़ार के साथ ही साथ रूस के सारे पूँजीपतियों को भी उसी स्वर्ग का टिकट कटा दिया, जिस की कि वे अपने उपदेशों में चर्चा किया करते थे। सोवियत रूस की उसी धरती पर, जहाँ उन्हों ने जनता के लिए नर्क बना रक्खा था, सच्चे स्वर्ग के निर्माण का आयोजन किया गया। श्रमकार और कृषक शोषित न रहकर शासक बन गए।

श्रमकार जहाँ मानव जाति का तन ढकता है, और उसे अति-शीतलता और अति उष्णता से सुरक्षित रखता है, वहाँ कृषक उसे भोजन देकर जीवित रखता है, और चलाता है। यह दोनों ही अपने विशाल कन्धों पर जगत को सँभाले हुए हैं। इन दोनों में से किसी एक के शिथिल होते ही संसार का सत्यानाश हो जाय। श्रमकारों की ओर संकेत करके खूब कहा है 'करुण' जी ने:-

श्रम - संकट सभी सँभाले
किन की यह कलित कलाई ?

किन के दम से दुनिया में
छवि - छटा अनूपम छाई ?

और फिर कृषकों की ओर संकेत करके भी 'करुण' जी ने खूब ही कहा है : -

हल के बल जो हल करती
नित पेट - पहेली प्यारी,
बलि जायें कृषक - भुजा पर
भुज - दण्ड भटों के भारी।

साम्यवादी विधान के अनुसार जनता के लिये श्रमिकों और कृषकों की भुजाओं का सम्मेलन कराने की रीति और नीति लेनिन ने बताई थी। लेनिन की मृत्यु के बाद स्तालिन ने उनका कार्य आगे बढ़ाया। नगरों में संचालित कल - कारखाने पूँजीपतियों के पराभव के पश्चात् श्रमकारों के हाथ में आगये, और इस प्रकार नगरों में साम्यवाद की जड़ जम गयी। ग्रामों में, सामन्तों के संहार के बाद, विषमता के विनाश और समता की स्थापना से सोवियत-भूमि स्वर्ग-भूमि बन गई।

इसी लिये, जब कि तमाम पूँजीवादी देशों में आर्थिक कँपकपी फैली हुई थी, सोवियत प्रदेश में लोग उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ रहे थे। सम्पूर्ण संसार में केवल रूस ही एक ऐसा देश था, जो उन दिनों सुख-शान्ति के राज-मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक

२३३७

बढ़ता जा रहा था। 'तमसा' के गायक ने इसी लिए रूस के सम्बन्ध में संकेत किया है:—

रूसी श्रमिकों की जय हो
रूसी श्रमिकों की जय हो,
समता के पावन पथ पर
यह विश्व बढ़े निर्भय हो।

श्रमिकों और कृषकों का शासन स्थापित होते ही साहित्य, कला और विज्ञान को भी सोवियत प्रदेश में अलौकिक स्फूर्ति प्राप्त हुई। सब के सहयोग से एक ऐसे राष्ट्र की रचना हुई, और हो रही है, जो अजेय और अपराजित होकर सम्पूर्ण संसार को एक सुख-समृद्ध कुटुम्ब का रूप दे सके। सोवियत रूस अजेय तो सिद्ध हो ही गया है, उस के विजयी बनने में भी विलम्ब नहीं है। सोवियत की यह स्थिति निरर्थक विचारों की जुगाली करने वालों को भी साम्यवादी साहित्य पढ़ने के लिये प्रेरित करती है। 'करुण' जी ने प्रगतिशील प्रेरणा का पोषण करने के लिए ही 'तमसा' नाम की इस साम्यवादी 'संहिता' का सृजन किया है।

'तमसा' का आरम्भ 'करुण' जी ने उस अदृश्य शक्ति की बन्दना से किया है,

जिस की छाया के नीचे
यह हाहाकार सच्चा है,

बनता जो अन्तर्यामी
जिस ने यह 'जाल' रचा है ।

अपने हा हा कार का परिचय देते हुए आगे चल कर 'करुणा' जी कहते हैं:--

अनुभव है जिन्हें न कोई
दुखियों के दुख दारुण का,
सम्भव है, समझ न पायें
यह हाहाकार 'करुणा' का ।

किन्तु 'करुणा' जी का यह हा हा कार ही तो हिन्दुस्तान की दारुण दीनता का हाहाकार है। वास्तविकता के दिग्दर्शन से दूर भागने वाले और शृंगार के मन-मोदक उड़ाने वाले कवियों से वह कहते हैं--

जल चुका जठर - ज्वाला में
नख - शिख शृंगार कभी का,
सावन के अंधे कवि ! क्यों
गाते रस-राग तभी का ?

'करुणा' जी केवल कृषकों और श्रमकारों के टूटे-फूटे घरों और झोपड़ों में ही नहीं गए, उन्हों ने जहाँ भी क्रन्दन सुना वहीं पहुँचे,

और उस क्रन्दन की प्रतिध्वनि उन बहिरे कानों में डालने का प्रयत्न किया, जो उसे सुनने से आनाकानी किया करते हैं। सामाजिक विषमता और उस से उत्पन्न आर्थिक पीड़ा से पीड़ित अछूतों की गलियों में, और बिलखती हुई विधवाओं के एकान्त कोनों में उन्हों ने करुणा का चीत्कार सुना। सामन्त शाही महलों की ओर लक्ष्य कर के उन्हों ने कहा--

कुल पाप - दोष दुनिया के
यदि एक जगह जुड़ जायें,
आधे में विश्व समूचा
आधे महलों से आयें।

'करुण' जी वहाँ भी गए, जहाँ पाखंड का अखाड़ा है, पापों का भण्डार है, और उन्हों ने निर्भय होकर उस का भण्डाफोड़ किया:--

द्विज देवों ने जब देखी
दूकान न अपनी चलती,
पोथों की श्रद्धा - बगीची
उतनी न फूलती फलती—

जंगल से टाट उठा कर
वह बस्ती में आ धमके,

उन के वह पोथे-पत्रे
महलों के नीचे चमके ।

हाँ, आज इन्हीं के बल से
रक्षित है सत्ता सारी,
इन से निर्भयता पा कर
पलती पूँजी हत्यारी ।

'करुणा'जी का निरीक्षण कितना तीक्ष्ण है, इसका अनुमान उनके पूर्व कालीन ग्रामीण जीवन के वर्णन से होता है । ब्राह्म-बेला में भारत की ग्राम्य गरिमा का दिग्दर्शन कराते हुए वह कहते हैं:—

हो उठी हलों की हलचल
हलवाही की हेला में,
बैलों के घन घन घण्टे
बज उठे ब्राह्म-बेला में ।

घम्मर घम्मर की गत पर
मटकी में चली मथानी,
अब दही बिलोने बैठी
कमी किसान की रानी ।

विगत वैभव की तुलना में वर्तमान ग्रामीण जीवन का दुर्दृश्य देखिये :—

सुख-साज भरे भवनों में
रस-रंग जहाँ थे जारी,
धुँधुआती ज्वाल-जठर के
अब हैं मसान वह भारी !

तब के ग्रामीण गुणीले
अब हैं गँवार अज्ञानी !
जो विश्व-विजेता तब थे
अब हीन पराजित प्राणी !!

केवल साम्राज्यवाद की ही पूँजीवाद के साथ मिला-भिली नहीं है। यह 'वाद' वह 'वाद'-न जाने कितने दुर्वादों का इसके साथ अनुचित सम्बन्ध है। और यह 'धर्म' निरा निठल्ला होते हुए भी अपना आसन ऊँचा बनाये बैठा है। इस का भण्डाफोड़ करते हुए कवि कहते हैं:—

पाखंड पढ़ा कर जिस ने
दे दिया बुद्धि पर ताला,

क्यों 'धर्म' इसे तुम कहते
यह तो अधर्म का आला !

धर्म की इस धाँधली के कारण ही संसार में विकार का प्रसार इतना अधिक है। इस के विनाश के लिये विचारों के और भावों के बहुत से दहकते हुए अंगारों की आवश्यकता है। वह अंगारे 'करुण' सरीखे कवियों की ही कविता से उत्पन्न हो सकते हैं। 'चलती चक्की देख के' कबीर की तरह रोने से यह काम नहीं होने का। उपाय तो वह कारगर होगा कि जिसके द्वारा उस चक्की में स्वयम् पिसने के बदले हम अपने इन विरोधी विकारों को ही पीस डालें।

साहित्य, कला और कविता के विषय में कितने ही विवाद क्यों न किये जायँ, एक बात निर्विवाद कही जा सकती है। और वह यह है कि 'रहस्य' अथवा 'छाया' के पिंजड़े में कवित्व की बुलबुल पालकर उससे खेलते रहना कम-से-कम वर्तमान काल में श्रेयस्कर नहीं है। आज तो ऐसी कविता की आवश्यकता है जो क्रान्ति की जिह्वा बनकर स्वच्छन्द बोलती फिरे। जब तक जनता को राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता नहीं मिलती--जब तक पर-वशता और पेट-पूजा की चिन्ता समाप्त नहीं होती-तब तक न 'छाया-वाद' की छाया सुहावनी लगती है, न 'रहस्य-वाद' का रहस्य समझ में आता है। हमारा कल्याण तो इस

समय सच्चे और स्पष्ट 'कायावाद' में है। आज की इस विषम और परवश अवस्था में कला को केवल दिमागी ऐयाशी का साधन बनाना आत्म-हत्या के समान है।

यह पुस्तक प्रगतिशील साहित्य की एक प्रतिनिधि है--ऐसे साहित्य की, जो अक्षय सुख-शान्ति से सम्पन्न उस युग का निर्माण करेगा, जिसका स्वप्न मैं और मेरे मित्र 'करुण' जी, तथा हमारे सरीखे अनेक 'पागल आदर्श-वादी' देखा करते हैं।

जंगबहादुरसिंह
सहायक सम्पादक
'दी ट्रिब्यून'

लाहौर
१५ मार्च, १९४४

अपनी ओर—

आज से ठीक तेतालीस वर्ष पहले की बात है। नव उन्नति का उज्वल सन्देश लाने वाली 'बीसवीं शताब्दी' का शुभागमन हुए अभी केवल एक-डेढ़ मास हुआ था,—हाँ, वह १६०१ ईस्वी की शिवरात्रि का प्रातःकाल था—जब कि इटावा (यू० पी०) के—केवल पाँच-छः घरों के—कदमपुरा नाम के एक अति सामान्य गाँव में, 'कहाँ! कहाँ!!' की रोदन-ध्वनि से किसी हल-बैल-विहीन किसान के 'घर' की अशान्ति-वृद्धि करता हुआ एक बालक उत्पन्न हुआ। घर की अवस्था किसी खँडहर से अधिक अच्छी न थी! चारों ओर की दीवारें बरसात के थपेड़े खा खा कर, अत्याचार पीड़ित किसानों की नाईं, कहीं आधी कहीं सारी गिर गयी थीं, जिनके द्वारा कुत्ते-बिल्ली आदिक जीव-जन्तु, अपने आखेट के अनुसन्धानार्थ निर्द्वन्द घर में आ जा सकते थे! मुख्य द्वार पर दो-तीन अनगढ़ तख्ते अपनी टूटी टाँगें अड़ाए किवाड़ों का अभिनय कर रहे थे! भीतरी भाग में एक ओर एक फूस की छानी थी, और

दूसरी ओर एक अधपटा बरोठा। प्रथम भाग टूटे फूटे अन्न-हीन मृत्तिका-पात्रों से, जो आपस में टकराकर बहुधा अकारण ही कराहने लगते थे, भरा हुआ था, और दूसरा भाग टूटी हुई खाटों और फटी हुई कथड़ियों का एक असाधारण संग्रहालय था, जिस में दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि, इस आलीशान घर के निवासी, अपने अवकाश की घड़ियाँ बिताया करते थे ! पशु-धन का अभी तक यहाँ सर्वथा अभाव था। हाँ, यदि कभी कहीं से कोई 'मरी टूटी बछिया' इस 'बाम्हन'-परिवार में आ जाती थी, तो उसे भी इसी में आश्रय मिलता था।

हाँ, तो करुणा की साक्षात प्रतिमा एक दीना-हीना माता ने, इसी 'इमारत' में उपरोक्त बालक को प्रसव किया था। किन्तु अरे ! आज वह खायेगी क्या ? घर में तो अन्न का एक दाना भी नहीं है !! बालक के पिता जी उस समय घर पर नहीं थे, और सुना है, उनके घर पधारने पर जब किसी के द्वारा उन्हें पुत्र-जन्म का शुभ सम्वाद सुनाया गया, तो वे कहने लगे, "अरे ! जे तौ रोज जुई स्वाँग बनाएँ बैठी रहती हैं ! हम कहाँ लौं रोज रोज धनकुन [धाय] बुलाय बुलाय बैठारैं !"

बालक के पिता श्रीमान् (?) शिवचरणलाल जी शुक्ल निपट निरक्षर होते हुए भी भावुकता से भरे स्वभाव वाले व्यक्ति थे, साथ ही जीवन-संग्राम में सर्वदा पराजित हो हो कर उनका अन्तस्तल सर्वथा चकनाचूर हो रहा था, इसी कारण उन्होंने उपरोक्त वेदना-व्यञ्जक वाक्य कहे थे। अपने जीवन में, इने गिने अवसरों पर ही

उन्हें दोनों समय भर-पेट भोजन प्राप्त हुआ था ! इस पर भी कोढ़ में खाज के समान बढ़ती हुई संतान-संख्या अब उनकी विरक्ति का कारण बन रही थी !

समयानुसार बालक का नाम भजनलाल रक्खा गया। किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों एक समीपस्थ गाँव के सम्पन्न (ज़मीदार) घराने में उत्पन्न एक बालक का नाम भी भजनलाल रक्खा जा चुका था, अतः उन निर्धन पिता जी की अनधिकारचेष्टा पर कुंठित होकर, उस सम्पन्न परिवार वालों ने उन्हें इतनी डाँट बतलाई, कि इच्छा न रहते हुए भी बेचारों को बालक का नाम बदल कर रामेश्वर रखना पड़ा !

इन चन्द 'चावलों' को देख कर ही पूरी हण्डी के 'भात' का अनुमान करने वाले वाचकवृंद सरलता से समझ सकते हैं, कि इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में पलने-पुसने वाले उपरोक्त बालक का शिक्षण-संरक्षण कहाँ तक समुचित रूप से हो सका होगा! भला जिस किसान के घर दाने-दाने के लिये लाले पड़े रहते हों, जहाँ पाँच-छः व्यक्तियों का भरण-पोषण पिता जी की दरिद्रता तथा किङ्कर्तव्यविमूढ़ता—नहीं नहीं, विषमयी विषमता के आधार पर स्थित निष्ठुर समाज की कुव्यवस्था, श्रम-शक्ति और साधनों के असमान विभाजन—के कारण बड़ी कठिनाई से हो रहा हो, जहाँ एक सद्यः प्रसूता जननी, चक्की पीस पीस कर, गोबर पाथ पाथ कर, और कपास बीन बीन कर अपने पति और पुत्रों का पेट-पालन कर रही हो, उस नवागन्तुक संतान की उच्च शिक्षा-दीक्षा कहाँ से हो सकती

थी ? उसके लिये तो यही कम सौभाग्य की बात नहीं थी, कि वह किसी प्रकार जीवित तो रह सका !

हाँ, तो वही बालक रामेश्वर, 'तमसा' नाम की इस क्षुद्र कृति के कर्त्ता के रूप में आज आप के सम्मुख उपस्थित है। लज्जा और संकोच के कारण उसके हाथ काँप रहे हैं ! वह सोचता है—'हाय ! मेरे इस दुस्साहस पर न जाने कौन क्या कहेगा ? कवित्व की कसौटी पर कसते ही जब यह सर्वथा फीकी, अरुचिकर, और सहस्रों काव्य-दोषों से परिपूर्ण निकलेगी, तब, परिहास के उस प्लावन से जो कवियों और कलाकारों की ओर से पुरस्कार स्वरूप मुझे मिलेगा, मैं किस प्रकार निस्तार पा सकूँगा !'

किन्तु एक बात का स्मरण हृदय को धीरज देता है। कवि न सही, लेखक, विचारक अथवा विद्वान् भी न सही, मैं एक भुक्त-भोगी तो हूँ, दरिद्रतादेवी का दारुण दृश्य तो अपनी ही आँखों देखे बैठा हूँ; क्रूर कुटिल और सत्यानाशक समाज का अनन्य आखेट तो हूँ, विषमता की विषमयी ज्वाला से जला हुआ एक मृतप्राय प्राणी तो हूँ ! बस, इतने प्रमाण-पत्र बहुत हैं ! क्या इतने से भी हे मेरे कवि-सम्राट ! संतोष न कीजियेगा ?

यदि नहीं, तो आइये, मेरी छाती पर, धधकते हुए हृदय को चीर कर देख लीजिये ! देखिये, उस में पड़े हुए असंख्य फफोले इस बात की साक्षी दे रहे हैं या नहीं, कि हमारे निर्दयी समाज ने, वैयक्तिक और सार्वजनिक विषमवाद ने, हमारी सभ्यता-संस्कृति, धर्म और धाँधली ने, और इन सब से पूर्व हमारी साम्राज्यवादी

शासन - व्यवस्था ने, उसे, उस दिल को, मसल कर, जला कर, ठुकरा कर, चलनी-चलनी कर रक्खा है या नहीं ! हमारी 'असन, वसन और वास' की अव्यवस्थाओं ने, हमें रुला कर, तड़पाकर, हमारा मलियामेट कर रक्खा है या नहीं ! बस, तब, और तभी, जब आप इस व्यथित, भीषण वेदना से प्रज्वलित, ज्वालामुखी को, भली भाँति चटचटाता और धुँधुआता हुआ देख सकेंगे, तब आपके मुख से हठात् यह वाक्य निकल पड़ेंगे:—

शब्द कैसे भी हों, भाषा कोई भी हो, भले ही छोटे मुँह बड़ी बात कही गयी हो, पर है सब ठीक। उच्च शिक्षा-दीक्षा के अभाव में केवल अपने ही अनुभव के आधार पर, एक भुक्त-भोगी ने, जो कुछ देखा सुना और समझा, चाहे वह खरा हो या खोटा, प्रिय हो या अप्रिय, सत्य हो या असत्य, स्पष्टता और निर्भीकता पूर्वक, ईमानदारी और सच्चाई के साथ, केवल इस आशा से कह दिया है, कि; [तुलसी के शब्दों में]

'संत-हंस गुन गहहिंगे परिहरि वारि-विकार।'

इस प्रसंग में एक बात और कह दूँ। कविता करना मुझे नहीं आता; आने लगे, ऐसी कोई इच्छा भी नहीं है। मैं तो एक मज़दूर हूँ, हल-बैल-विहीन किसान का बेघर-बार बेटा। किसान मेरे कुटुम्बी हैं, मज़दूर मेरे मालिक। अपने मालिक और कुटुम्बियों की हित-कामना कौन न करेगा ? किसानों और मज़दूरों को दुखी देखकर रोने लगता हूँ—हृदय के भार को हल्का करने के लिये। मेरा रोदन, मेरे आँसुओं की स्याही से

अंतरिक्ष में अंकित हो जाता है। इसे आप चाहे कविता कह लें, चाहे छन्दोबद्ध रुदन, चाहे कुछ और। मुझे तो अपने उद्धारक लेनिन के इस आदेश का पालन करना है—"हमें हमेशा किसानों और मज़दूरों को ही अपने सम्मुख रखना चाहिये,—कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी!"

एक दिन देखा, अधेड़ अवस्था का एक पहलवान फ़ुटपाथ पर बैठा कह रहा था—राह चलते शहरियों से—"मैं कोई वैद्य हकीम या डाक्टर नहीं हूँ। पहलवानी के दिनों में कुश्ती लड़ते हुए मेरे शरीर में जब कभी कोई चोट आ जाती थी, किसी अङ्ग की हड्डी टूटने या उखड़ने के कारण, तब मैं अपने उस्ताद के बतलाये हुए इस तेल की मालिश किया करता था। और इसके द्वारा मुझे बेहद लाभ हुआ है। आप भी यदि चाहें तो इससे लाभ उठा सकते हैं।"

पहलवान की उक्ति मेरे सम्बन्ध में सोलह आने सही सिद्ध होती है। अपने विषय में इसी बात को इस तरह कह सकता हूँ—"मैं कोई कवि, कलाकार अथवा विद्वान नहीं हूँ। जीवन के आरम्भ-काल से ही आपा-धापी के साथ युद्ध करते करते मेरे मन पर जो जो चोटें आयी हैं, उनकी औषध मेरे उस्ताद (लेनिन, मार्क्स और स्तालिन आदि) ने साम्यवादी व्यवस्था बतलायी है। अपने हृदय की वेदना दूर करने के साथ ही साथ अपने उस्ताद के बतलाये हुए इलाज से मनुष्य-मात्र का कल्याण कर सकूँ, तो कितना अच्छा हो। 'तमसा' में लिखित लकीरों का

यही लक्ष्य है। हाँ, यह देखना आप का काम है कि किसी नकली पहलवान के बनावटी तेल की तरह अपने उस्ताद के नाम पर मैं कोई घटिया औषध तो नहीं दे रहा हूँ। अस्तु।

जैसा कि प्रारम्भ में ही प्रकट किया जा चुका है, यह पुस्तक मेरे वैयक्तिक विचारों और निजी अनुभवों का संग्रह मात्र है, इसलिये अधिक पुस्तकें पढ़ पढ़ कर मुझे अपना निबन्ध बाँधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। फिर भी अनेक साम्यवादी ग्रंथों से विचार ग्रहण करके जो रचना-क्रम चलाना पड़ा है, उसके लिये उन के कर्त्ताओं को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

इसके पश्चात् मैं अपने मृत माता-पिता को, जिनके द्वारा मुझे, दुखमयी दारुण दीनता के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए, धन्यवाद पूर्वक स्मरण करता हूँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि यदि वे धन-सम्पन्न होते—मुझे बाल-घुटी के रूप में 'अभावों का आसव' सेवन कराने में असमर्थ होते—तो, प्रयत्न करने पर भी मैं इस कृति को इस रूप में उपस्थित न कर पाता। अतः उनके चरणों में सच्चे हृदय से मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ।

हाँ, एक प्राणी और भी है, जो कि मेरे धन्यवाद का प्रमुख पात्र है,—मेरी पत्नी अध्यापिका प्रफुल्लबाला। आप की अमित अनुग्रह के बल पर ही तो 'तमसा' की पंक्तियों का प्रादुर्भाव हो पाया है। रोटी-रचना ही तो छन्द-रचना का आरम्भिक आधार है।

अब इस पुस्तक के प्रस्तावना-लेखक—'तमसा' पर प्रकाश डालने वाले राणा जंगबहादुर सिंह जी के प्रति मैं अपनी हार्दिक

तज्ञत्यता प्रकट करता हूँ। मुझे मालूम है कि ऐसा करके अपने प्रति उनकी आत्मीयता को लघुता की ओर ले जा रहा हूँ। किन्तु विवश हूँ। विवश होकर यह कहे बिना नहीं रह सकता कि उनसे मेरे प्राणों को प्रेरणा मिलती है, और तन को त्राण।

जम्मू राज्यके पैन्थल ग्रामनिवासी पं० कृष्णचन्द्र शास्त्री का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन के अनुपम आतिथ्य से 'तमसा' के कोई पाँच सौ पद केवल पन्द्रह दिन में बन गये थे।

अन्त में जिन कम्पोज़ीटरों ने आँख गड़ागड़ा कर—एक एक अक्षर, पाई, मात्रा, जोड़ जोड़ कर—इस पुस्तक को यह सुन्दर रूप-लावण्य प्रदान किया, उन श्रमजीवियों के लिये, सच्चे हृदय से कृतज्ञता-प्रकाश करके, मैं इन पंक्तियों को समाप्त करता हूँ।

करुण-काव्य-कुटीर
कृष्णनगर—लाहौर
शिवरात्रि—१९४४ ई०

रामेश्वर 'करुण'

तमसा के तारक

'करुण'

तमसा

मानवता की हत्या से हर्षित
आपा - धापी की धुन में अन्धे
पर - वशता के वर्द्धक, और
विषमता के विधायक
साम्य - सुधा के शत्रु
निरंकुशता से कलङ्कित
क्रूरों कुटिलों को
उनके ही कृत्यों की
यह कालिमा
'त म सा'
सहठ समर्पित है।

शोषण की शीर्षक-सूची !

किस काव्य - कला विकला की
संचित कर शक्ति समूची,
हम आज बनाने बैठे
शोषण की शीर्षक - सूची !

—'करुण'

जिसने यह 'जाल' रचा है—

जो 'दीनबन्धु' कहला कर
दीनों के दुःख न हरता,
जो 'विश्वभरण' बन कर भी
भूखों के पेट न भरता—

निर्धन की दीन दशा पर
जो तरस न कुछ भी खाता,
जोड़ा है जिस ने जग में
धनियों से अपना नाता—

सदियों से देख रहा जो

सामन्तों की शैतानी,

लख लीला सम्राटों की

होती न जिसे हैरानी—

जिसका बल पाकर पनपी

धनिकों की छीना - झपटी,

सदियों से मौज मनाते

जिस के बल डाकू - कपटी—

ले ले कर आश्रय जिसका

मत - पंथ अनेकों फैले,

[आपस में बैर बढ़ाते

बो बो कर बीज विषैले ।]

अन्धेर मचा यह इतना

जिस की आँखों के आगे,

कितना ही जिसे जगायें

जो नींद न अपनी त्यागे—

अम्बार प्रबल पीड़ा का

लखकर भी जो न लजाता,

विषमय वैषम्य बढ़ा कर

जो 'समदर्शी' कहलाता—

अन्याय निरख कर इतना
जो 'न्यायी' समझा जाता,
जिसकी महान 'माया' का
प्रतिकार न कोई पाता —

जिसकी छाया के नीचे
यह हाहाकार मचा है,
बनता जो 'अन्तरयामी'
जिसने यह 'जाल' रचा है –

'करुणेश' कहाकर जिस ने
करुणा न कहीं दिखलाई,
उस के गुण - गौरव गाकर
होनी है कौन भलाई ?

× × ×

यह हाहाकार 'करुण' का—

अनुभव है जिन्हें न कोई
दुखियों के दुख दारुण का,
सम्भव है, समझ न पायें
यह हाहाकार 'करुण' का !

हँसना हो जिनको हँस लें
कस लें कुछ तीखे ताने,
पर - वशता की पीड़ा के
परिणाम हमें प्रकटाने ।

रस - राग नहीं, रोदन है
पीड़ित का पद - बंदन है,
आलोचक ! भूल न जाना
यह काव्य नहीं क्रन्दन है !

× × ×

कवि ! देख चुके चितवन तो
यह 'मधुबाला' की बाँकी,
आओ अब तुम्हें दिखायें
कुछ कंकालों की झाँकी !

सामन्तों की ड्योढ़ी पर
तुम दे लो दिव्य दुवायें,
हम तो इस 'करुणा कुटी' की
करुणा पर बलि बलि जायें !

गम-गम गुलदान - गलीचे
हाँ, तुम्हें मुबारक भाई !
अपने 'कवि' आज हुए हैं
श्रमकारों के शैदाई !

× × ×

हे काव्य - कला ! कुछ रो ले
रो - रो कर वसन भिगो ले,
दुख - दैन्य प्रबल प्रकटाकर
कुछ तो निज कालिख धो ले !

× × ×

लेखनी ! न डगमग डोले
लखकर आँखों का पानी,
कह सके कहीं सो कह दे
दुखियों की 'करुण कहानी' !

हाँ, आज तुझे तरना है
ज्यों त्यों यह सागर खारा,
बल - सम्बल साथ न तेरे
ओझल है कूल - किनारा।

'बामन' की बात भुलाकर
यह 'चन्द्र' तुझे छूना है,
बन्धन की व्यापकता का
दुख - दैन्य यदपि दूना है।

ध्रुव धैर्य हृदय में ला दे
लिख कर कुछ 'लाल' लकीरें,
कड़ - कड़ कर काट गिरा दे
पर - वशता की जंजीरें।

× × ×

मृतकों में जीवन डाले
यह तेरी 'करुण कहानी',
नित नूतन ज्योति जगा ले
जन - जन की जरठ जवानी।

वह आग उठे अम्बर में
यह अग्नि - गान सुन तेरा,
धू - धू कर जल - जल जाये
दुनिया का द्वन्द्व घनेरा।

कोई न धनी रह जाये
कोई न दरिद्र दिखाये,
'जो काम करें सुख भोगे'—
यह स्वयं - नियम बन जाये।

श्रमकार-कृषक की जय हो
समता की विश्व - विजय हो,
सम्राटों की कब्रों पर
पूँजी - पतियों का क्षय हो।

—:✱:—

 —तमसा

ओ मानव ! महिमा वाले—

मानव की पदवी पाकर
कुछ तो कल कीर्ति कमा ले,
नर - जन्म वृथा क्यों खोता
ओ मानव ! महिमा वाले ?

कितने सुयोग से मिलती
मानव की कर्मठ काया,
रे नीच ! नराधम ! तू ने
इसका क्या मूल्य चुकाया ?

यह अन्न - पवन यह पानी
क्यों तूने व्यर्थ बिगाड़ा ?
इस पृथ्वी पर रहने का
कुछ दिया किराया - भाड़ा ?

दुख देख दुखी दुनिया का
तुझ को कुछ करुणा आती ?
पर - पीड़ा देख पसीजे
पल भर भी तेरी छाती ?

पर - वशता के बंधन में
बंदी लख देश दुलारा,
कुछ तूने समक दिखाकर
निज बैरी को ललकारा ?

इस भव्य भारती - तन पर
यह 'श्वेत कुष्ट' की छाया !
इस घोर घृणा से तेरा
तन - प्राण कभी तड़पाया ?

यह अत्याचार - अनय का
तम - तोम चतुर्दिक छाया !
प्रतिकार कभी करने को
तू ने पौरुष प्रकटाया ?

लख कर स्वदेश का दिन - दिन
हा ! पतन - पराभव भारी,
यह पाप - ताप हरने को
कुछ नीति नयी विस्तारी ?

× × ×

सेवा कर सब की सारी
जो अशुभ - अछूत कहाया,
उस प्राणी की पीड़ा पर
क्या तरस तुझे कुछ आया ?

बेकस विधवा बाला की
यह देख दशा दुखदायी,
उद्रेक हुआ करुणा का
कुछ तेरे मन में भाई ?

इतना अनाज उपजा कर
जो अन्न बिना मर जाता,
उस दीन - दुखी 'खेतल' से
रक्खा कुछ तू ने नाता ?

जिस के शोणित से सिंच कर
महलों ने प्रभुता पायी,
उस भृत मजूर से तू ने
अनुभूति कभी दिखलायी ?

बेकार फिरे बरसों से
जो काम न कुछ भी पाकर,
कुछ दिया दिलासा उस को
तू ने निज स्नेह निभाकर ?

× × ×

दुखियों के दुख दारुण का
करने को शीघ्र सफ़ाया,
बेचैन विकल हो तू ने
कुछ यत्न नया निर्माया ?

विषमयी विषमता तज कर
शुभ साम्य - सुधा लाने को,
कटिबद्ध हुआ क्या तू भी
बल - विक्रम दिखलाने को ?

× × ×

मानवता के मर्दन की
दानवता ने हठ ठानी।
कह सका कभी कवि तेरा
उसकी यह करुण कहानी ?

—:⊛:—

कविराज ! किधर हो जाते ?

किस का गुण - गौरव गाते ?
किस का श्रृंगार सजाते ?
'छाया' - माया के मग में
कविराज ! किधर हो जाते ?

जब बाग फला - फूला था
लहराती थी हरियाली,
कल कुहू - कुहू करती थी
तब कोयल डाली - डाली,

जब उपवन हरा - भरा था
बहती थी वायु निराली,
वासन्ती साज सजाने
आती थी ऋतु मतवाली,

वीरान हुआ बागीचा
दावा ने उसे जलाया,
अब वहाँ न वह हरियाली
केवल ठूँठों की छाया !

× × ×

यह उजड़ गया उपवन भी
झंझा ने उसे झकोरा,
अब वहाँ न वह फुलवाड़ी
ऊसर है कोरमकोरा।

बस बैठ उसी 'ऊसर' में
लेकर ठूँठों की 'छाया',
कवि - कोकिल किसे सुनाते
नित राग वही मन भाया ?

× × ×

जल चुका जठर - ज्वाला में
नख - शिख शृंगार कभी का,
सावन के अन्धे कवि ! क्यों
गाते रस - राग तभी का ?

अधमरी, उसाँसें भरती
भूखों मरती 'महतारी' !
धिक्कार कवीश्वर ! तुमको
तुम बने फिरो शृंगारी !!

बन्दी बन 'बाप' तुम्हारा
गैरों की करे गुलामी,
हा हन्त ! अभी तक तुम हो
फिर भी 'रहस्य' के हामी !

असहाया जान 'जननि' को
वह लूट रहे पत पापी,
शृंगार भरे गीतों से
रँगते तुम सौ - सौ कापी !

'उस पार' हमें पहुँचाना
व्यवसाय बड़ा बतलाते,
इस पार बसे रौरव से
निर्मुक्त न क्यों करवाते ?

कायरता कहें तुम्हारी
किम्वा कृतघ्नता भारी—
अथवा प्रमाद में पड़कर
तुम ने निज नीति बिसारी !

सदियों की पर - वशता से
पद - पद पर ठोकर खाते,
फिर भी 'छाया' में छिप कर
क्यों प्रतिभा को कलपाते ?

जिन कङ्कालों के श्रम से
तुम ने यह प्रतिभा पायी,
उन के प्रति प्रेम दिखाते
क्यों लाज तुम्हें है भाई !

'यह कला कला के हित है'—
बस एक तुम्हारा नारा,
क्या तर्क निराला लेकर
कर लिया बचत का चारा !

जो कला 'कला' के हित है
किस काम हमारे आयी ?
'मुक्तक' से लाभ उठाये
क्या 'मुर्ग बुभुक्षित' भाई !

वह कला नहीं 'चकला' है
वासना बढ़ाती मन की,
कुछ भी न कभी सुलझायी
उलझन जिसने जीवन की।

क्या लक्षण काव्य - कला का
कवि आज हमें बतलाता—
जो 'सहित' न हो संकट में
'साहित्य' वही कहलाता !

उपयोग न जिसका कोई
जनता के जग - जीवन में,
हाँ, कला वही कल - बल जो
बिखरा दे व्यर्थ व्यसन में !

× × ×

शृंगार कभी सरसाया
व्यभिचारी व्यक्ति बनाया,
भगवान व्यसन में बँधकर
जिस - तिस के पीछे धाया !

वैराग्य विपुल बगराया
दुनिया से द्रोह सिखाया,
अहिफेन भक्ति की खाकर
भ्रमजाल जगत बतलाया !

'छाया' - 'रहस्य' के रस की
अब लगे दोहाई देने,
पीड़न के पोषक बन कर
कवि - कोविद का पद लेने !

भूचाल भयानक आता
तुम उस के गर्त समाते,
तुम - से कवि आज कला का
उपहास न यों कर पाते !

समता - साधन की धुन में
लगती यदि युक्ति तुम्हारी,
परिहास विपुल क्यों पाते
मुझ - से नर निपट अनारी !

× × ×

हे भारत - भाग्य - विधाता !

धन - धान्य भरा - पूरा था
थीं सुख - सुविधायें सारी,
घर - द्वार महा मंजुल थे
घर वाले किन्तु अनारी !

आपस की फूट विषैली
फैली थी उन में भारी,
भाई भाई के भीतर
था बैर परस्पर जारी !

यह देख सुअवसर अपना
डाकू कुछ अन्दर आये,
हाथों में लिये तराज़ू
छाती में छुरी छिपाये !

बोले हम वणिक विदेशी
व्यापार करेंगे अपना,
हमको कुछ जगह दिला दो
धन - माल धरेंगे अपना।

कपटी बनियों की बातें
घर वाले क्योंकर जाने,
आतिथ्य अतिथि का करना
जो धर्म सदा निज माने।

आदर दे दस्युजनों को
घर - भीतर बास बताया,
यह लो खाना, यह पानी
यह बिस्तर–यों समझाया।

गहरी निद्रा में सोये
फिर अपने पैर पसारे,
क्या चिन्ता थी चोरों की
घर - द्वार खुले थे सारे।

जब दस्युजनों ने देखा
हैं सुप्त सभी घर वाले,
भीतर से द्वार लगाये
दे दे कर अपने ताले।

समस्या—

वह छुरियाँ छिपी दिखाकर
झट बन्दी उन्हें बनाया,
उनका उस भव्य भवन में
आतंक अचानक छाया !
अनुकूल समय पाते ही
साथी कुछ और बुलाये,
फिर तो घर - भीतर उनके
दल - बादल - से घिर आये !

× × × ×

प्रतिकार प्रबल करने की
घर वालों ने जब ठानी,
दो - चार पकड़कर पटके
तलवार तमक कर तानी—
हैं ! यह अनर्थ क्यों करते ?
बोले वह ब्रह्मज्ञानी,
घर वालों की जिन पर थी
श्रद्धा अटूट अनजानी –
हिंसा से हिंसा बढ़ती
हिंसा है पातक भारी,
इस भाँति इन्हें यदि मारा
होगी अपकीर्ति हमारी।

मैं हृदय बदल कर इनका
आत्मिक उद्धार करूँगा,
यह शीघ्र स्वयम् हट जायें
इन में वह भाव भरूँगा !

× × × ×

गम्भीर महा सागर में
जो डूब रहा बेचारा,
अब ताब न जिसके तन में
बल - बुद्धि लगाकर हारा !

भँवरों की छीना - झपटी
दिन - दिन में बढ़ती जाती,
वह काल - निशा मतवाली
रह रह कर रंग दिखाती !

लहरों से लड़ते लड़ते
बेहाल हुआ तन - मन का,
पल - पल में बढ़ता जाता
संकट जिसके जीवन का !

है साथ न साथी-संगी
ओझल है कूल-किनारा,
अब क्योंकर जान बचेगी
चलता है एक न चारा !

नाविक ने आँख उठा कर
उस को यों बहते देखा,
'मैं डूबा, मुझे बचा लो'
चिल्ला कर कहते देखा !

झट तिनका एक उठा कर
बहते की ओर बहाया,
लो इसे पकड़ कर तैरो,
यों धीरज उसे धराया !

× × × ×

क्या जाने कितने दिन का
भूखा था एक भिखारी,
ज्वाला से जल कर जिस की
सूखी थी काया सारी !

दो - दो दाने के खातिर
    दर - दर की ठोकर खाता,
        जूठे पत्तल पाने को
            कुत्तों से लड़ लड़ जाता !

वृक्षों की छाल चबा कर
    पौदों के पत्ते खा कर,
        गन्दी गलियों में सोता
            घूरे की घास बिछा कर !

कुछ काल इसी बिधि बीता
    फिर हीन हुआ हिलने से,
        खाने पहने रहने को
            कुछ भी न कहीं मिलने से !

संयोग, उधर आ निकले
    वह वैद्य बड़े सरनामी,
        पर - पीड़ा जिन्हें न प्यारी
            जो जीव - दया के हामी—

झट नुस्ख़ा नया बनाकर
    बतला दी एक दवाई,
        बोले—बस इसे 'लगाकर'
            तुम स्वस्थ रहोगे भाई !

× × × ×

हे वैद्य बड़े बल - दाता !
हे नाविक तन के त्राता !
हे हे वर ब्रह्मज्ञानी !
हे भारत - भाग्य - विधाता !

पर - वशता के सागर से
निर्धनता के रोगों से,
कब त्राण हमारा होगा
ढीलेपन से, ढोंगों से ?

धीमें 'सुधार' की धारा
कितने दिन और बहेगी ?
चरखे की चोखी चरचा
कितने दिन और रहेगी ?

कच्चे कुसूत के धागे
क्या क्रान्ति करेंगे कोई ?
मुट्ठी भर नमक बना कर
जागेगी जनता सोयी ?

दो दो दशाब्दियाँ बीतीं
यह 'ठोस काम' कर कर के,
सचमुच स्वराज्य पा लेंगे
हम बिन मारे मर मर के ?

—समता

कितनी शताब्दियाँ लेगा
यह 'पुण्य प्रयोग' तुम्हारा ?
क्या दूर विषमता होगी
यों सत्य - अहिंसा द्वारा ?

नित नयी तुम्हारी 'शह' से
'बिड़ले' 'बजाज' बल पाते,
प्रतिहिंसा पाप बता कर
तुम प्रगति - विरोध बढ़ाते !

मक्कार धनाधीशों को
'ट्रस्टी' बतला कर तुमने,
जनता पर जादू डाला
अध्यात्म सुँघा कर तुमने !

पड़ कर 'प्रयोग' - पचड़ों में
यह देश दबा दुख पाता,
बख्शोगे अब न इसे क्या
हे भारत - भाग्य - विधाता ?

× × × ×

दुनिया की द्वन्द्व - कहानी—

क्यों एक न कुछ भी कर के
नित बैठे बैठे खाता ?
क्यों एक सदा श्रम करके
भर पेट न भोजन पाता ?

दिन - दिन भर वस्त्र बना कर
क्यों फिरता एक उघारा ?
क्यों एक लदा वस्त्रों से
पहने नित न्यारा - न्यारा ?

उस ओर किसी के कुत्ते
क्यों दूध - जलेबी खाते ?
इस ओर किसी के बच्चे
क्यों रोटी को रिरियाते ?

 — तमसा

बेकार कभी का बैठा
क्यों पढ़ कर एक अभागा ?
क्यों एक बिना विद्या ही
पद पाता है मुँह - माँगा ?

क्यों एक अछूत कहाता
कर के नित सेवा सारी ?
भिक्षा की वृत्ति बढ़ा कर
क्यों पुजता एक पुजारी ?

नित जाली व्याज बढ़ाकर
क्यों साहूकार सुखी है ?
सच्चाई से श्रम करता
फिर क्यों श्रमकार दुखी है ?

× × ×

अरबों मन अन्न यहाँ है
फिर क्यों कुछ दुनिया भूखी ?
मिलती न यहाँ क्यों सब को
रोटी भी रूखी - सूखी ?

अरबों गज़ वस्त्र यहाँ हैं
जिन से पर्वत पट जायें,
फिर क्यों कुछ फिरें उघारें
क्यों वस्त्र न पूरे पायें ?

रहने के लिये बनी है
धरती यह इतनी भारी,
फिर क्यों कुछ मैदानों में
नित रात बिताते सारी ?

सामान सभी सुविधा के
पृथिवी पर पैदा होते,
फिर भी क्यों मनुज करोड़ों
नित संकट सहते - रोते ?

सब के खाने, पहने के
रहने के यहाँ सुभीते,
फिरते हैं किन्तु करोड़ों
फिर क्यों रीते के रीते ?

मणि - माणिक - सोना - चाँदी
धरती में भरे पड़े हैं,
आधे से अधिक अभागे
फिर क्यों कंगाल बड़े हैं?

× × × ×

दिन - दिन भर वस्त्र बना कर
कुछ वस्त्र बिना मर जाते !
कुछ कुत्तों के तन पर भी
मोटी मख़मल पहनाते !!

दिन - रात कड़ा श्रम कर के
कुछ दुख - दारिद में मरते, !
कुछ कर के छीना - झपटी
सुख - साधन - बीच विचरते !!

कुछ धनी यहाँ कुछ निर्धन
कुछ पीट रहे कुछ पिटते,
कुछ आगे बढ़ते जाते
कुछ पीछे पड़े घसिटते !

कुछ पीस रहे कुछ पिसते
कुछ मार रहे कुछ मरते,
कुछ बने बड़े विज्ञानी
कुछ वन के बीच विचरते !

कुछ चूस रहे कुछ चुसते
कुछ खाते हैं कुछ खपते,
कुछ बली बड़े कुछ निर्बल
कुछ दबा रहे कुछ दबते !

कुछ नीचे पड़े सिसकते
कुछ ऊपर बैठे हँसते !
कुछ रोते बन्दी बन कर
कुछ बन्धन उन के कसते !!

कुछ बैठ बड़े सिंहासन
शासक - सम्राट कहाते,
कुछ भार न सह कर उनका
औंधे मुँह पड़े दिखाते !!

कुछ काम न करके ऊँचा
अपने को उच्च बताते !
कुछ करते सेवा सारी
फिर भी अछूत कहलाते !!

कुछ अंधाधुंध मचाकर
मारा करते नित मीरी,
सम्मान करें सब उनका
हासिल है उन्हें अमीरी !

कुछ काम सदा सब करना
कर्तव्य समझते अपना,
गलहार गरीबी उनका
दुनिया है सुख का सपना !

कुछ राजा बन बन बैठे
अरबों की द्रव्य दबाये !
कुछ रैयत - रेजा रह कर
फिरते नित पेट खलाये !!

सामन्त कहा कर कुछ तो
मुच्छों पर ताव जमाते,
खाने - पहने, रहने का
कुछ एक न साधन पाते !

पोथे - पत्रे दिखला कर
कुछ बनते ब्रह्मज्ञानी,
कुछ नीच - निगोड़े रह कर
सहते उन की मनमानी !

कुछ जाग उठे कुछ सोते
कुछ हँसते हैं कुछ रोते,
कुछ फिरते मौज मनाते
कुछ खाते गम के गोते !

कुछ काम करें कुछ बैठे
कुछ पुण्य करें कुछ पापी,
हाँ, दीख रही दुनिया में
हम को यह आपा - धापी !

कुछ मोटे - तगड़े - ताज़े
कुछ की नित सूखे काया,
हाँ, दीख रहा दुनिया में
यह द्वन्द्व चतुर्दिक छाया !

दो वर्गों में बँट बँट कर
यह विश्व भगा जाता है,
छीना - झपटी का इस में
रण - रोग लगा जाता है !

द्विजदेव ! दया कर देखो
दुनिया की द्वन्द्व - कहानी,
क्यों 'वर्ण - चतुष्ठय' कहते
करके नित खींचातानी ?

कलियुग की कथा सुना कर
दुर्भाग्य - दोष दिखला कर,
क्यों विष - वैषम्य बढ़ाते
जनता की जीभ दबाकर !

× × × ×

यह दो विपरीत व्यथायें !

कुछ खा खा कर मर जायें
कुछ खाद्य न पूरा पायें,
हा ! दीख रहीं दुनिया में
यह दो विपरीत व्यथायें !

कुछ को मंदाग्नि सताती
वह चूरन फाँका करते,
कुछ को जठराग्नि जलाती
वह चूल्हे झाँका करते !

तोड़े न तिजोरी कोई
कुछ इस चिन्ता में मरते !
कैसे यह कर्ज़ कटेगा ?
कुछ इसकी चिन्ता करते !

कुछ चोर - ठगों के हाथों
मर - कट कर कष्ट उठाते,
कुछ निर्धनता में दब कर
दुख - दावा से दहलाते !

कुछ काम न पाकर पूरा
चरबी से लद लद जाते,
कुछ काम थकाऊ करके
बिन काल बुढ़ापा पाते !

× × × ×

मन्दाग्नि किसी को इतनी
खाते - पीते भय खाता,
जठराग्नि किसी की ऐसी
कम खाकर खून सुखाता !

लाखों की द्रव्य दबाकर
कुछ पुत्र बिना पछताते,
कुछ देख दुखी पुत्रों को
विष खा खा कर मर जाते !

कुछ साधन भी सब पाकर
विद्या से बैर बढ़ाते,
कुछ शुल्क बिना विद्या से
वंचित हो बयस बिताते !

धनवानों के महलों में
व्यसनों ने डेरा डाला,
दुखमय दरिद्र - दानव ने
निर्धनियों का घर घाला !

वैषम्य - व्यवस्थे ! तुझ से
हम क्योंकर पिण्ड छुड़ायें ?
फैलीं हा ! तेरे फल से
यह दो विपरीत व्यथायें !

× × ×

यह अर्थ - विषमता भारी—

प्राधान्य हुआ पैसे का
कर गुण - गौरव की ख्वारी,
फैली है जब से जग में
यह अर्थ - विषमता भारी !

जिसकी माया में मरते
करके हम दैया - मैया,
हाँ दीख रहा दुनिया में
यह रब से बड़ा रुपैया !

यह चली कहावत कब से—
'सुख देता बाप न भैया,
बस एक सहायक सब का
यह सब से बड़ा रुपैया' ?

—समसा

आचरणों की चरचा का
क्या काम यहाँ है भाई !
सिक्के के हाथ बिके हैं
गुण - गौरव - बुद्धि - बड़ाई !

नित नयी निपुणता पाना
नरता का नाम नहीं है,
आराम कहाँ अब उसको
जिसके कर 'दाम' नहीं है ?

ध्रुव धर्म यही कलदारम्
गुण गर्म यही कलदारम्,
कलदार बिना कल किसको ?
कल कर्म यही कलदारम् !

नकदी में भगवद्गीता
नकदी में रामायण है,
नकदी में ब्रह्म बसाया
नकदी में नारायण है !

कुछ हों सफ़ेद कुछ पीले
सिक्के जिनके चमकीले,
दुष्कर्म सभी दब जायँ
बन बैठें गुण - गर्वीले !

पंडित - वेदज्ञ वही है
सज्ञान - गुणज्ञ वही है,
पैसा है जिसके पल्ले
सच्चा सर्वज्ञ वही है !

धनवान सुधी - धर्मी है
निर्धन है पामर - पापी !
क्या क्या न अनर्थ कराती
धन की यह आपाधापी !

छल - छिद्र सभी ढकने को
पैसा है केवल काफ़ी,
पैसे के बल से पा लें
वह 'तीन खून की माफ़ी' !

पैसे के संग सगाई
पैसे में प्रभुता पायी,
पैसे वालों से पूछो
पैसे की बिपुल बड़ाई !

पैसे की पंगु प्रथा में
सत्ता का ताप छिपा है,
कह रहे कवीश्वर कब से—
'पैसे में पाप छिपा है' !

× × × ×

आओ वह विश्व बसायें—

यह विष - वैषम्य हटायें
वह साम्य - सुधा सरसायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें ।

जनता का राज जहाँ हो
समता का साज जहाँ हो,
श्रमिकों - कृषकों के दल की
ऊँची आवाज़ जहाँ हो ।

जनता के शुभ शासन से
जनता हो शासित सारी,
हर ग्राम - नगर घर - घर में
प्रिय पंच - प्रथा हो जारी ।

सम्राट सभी हों सब के
सब के हों सभी रिआया,
बहुतों पर 'एक' न पाये
अधिकार कभी मन भाया ।

सामन्तों की सत्ता का
दुनिया से दिया बुझायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें ।

× × ×

कोई न धनी रह जाये
कोई न दरिद्र दिखायें,
'जो काम करे सुख भोगे'
यह स्वर्ण - नियम बन जाये ।

श्रम करके ही मिलती हों
सब को सुविधायें सारी,
श्रम करने से न घिनायें
अनपढ़े - पढ़े - नर - नारी ।

खाने - पहने - रहने के
सब को आराम सभी हों,
कोई न कहीं हो खाली
करते सब काम सभी हों।

दौलत का दम्भ दिखाकर
निर्धन को धनी न खायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें।

× × ×

'अपना' न जहाँ हो कुछ भी
'सब सब का' समझा जाये,
मानवता मुग्ध मनों में
मानव से स्नेह लगाये।

'मेरे 'तेरे' 'उसके' की
जिसमें न कहीं कुछ रेखा,
'सब सब का' इसी नियम से
लगता हो जिसका लेखा।

ऋण की न जहाँ चिन्तायें
धन के न जहाँ हों खटके,
साधन के बिना किसी का
शुभ काम न कोई अटके।

महलों की मैली नलियाँ
झोंपड़ियों को न सड़ायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें ।

× × ×

ऊँचे - नीचे पलड़ों की
यह तुला न रहने पाये,
शोषण का मार्ग मदीला
यों खुला न रहने पाये ।

धनिकों की धींगाधींगी
अब और न चलने पाये,
यह राज - तंत्र दुखदायी
फूलने न फलने पाये ।

वह नयी - निराली दुनिया
वह जगी - जगायी जनता,
पूँजी से पिचल पिचल कर
रोती न जहाँ निर्धनता ।

धनियों से धन। साधन ले
निर्धनियों को दिलवायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें।

× × ×

बातों के व्यर्थ बतासे
अब जहाँ न खाये कोई,
पोथों की पंगु प्रथा पर
विश्वास न लाये कोई।

कोई न किसी से नीचा
कोई न किसी से ऊँचा,
बस एक समान दिखाये
सब का सम्बन्ध समूचा।

जनता ने जहाँ दिया हो
जड़ता को देश - निकाला,
हाँ, निकल गया हो जिसमें
हठधर्मी का दीवाला।

धर्मी कहलाकर जिसमें
लड़ सकें न भाई-भाई,
दाढ़ी - चोटी के पीछे
होती हो अब न लड़ाई।

सीमा - संकोच हटाकर
'वसुधैव कुटुम्ब' बनायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें।

× × ×

विज्ञान बढ़े मनमाना
यंत्रों का खुले ख़ज़ाना,
'श्रम' और 'उपज' दोनों में
सब का सम ठौर-ठिकाना।

बेकार न फिरने पायें
श्रमकारों के दल भारी,
बरबाद करे कितनों को
अब और न यह बेकारी।

दो वर्गों में बँट बँट कर
यह विश्व न भगने पाये,
छीना - झपटी का इस में
रण - रोग न लगने पाये !

यह 'श्रेणी - भेद' भगा कर
एका का अमृत खायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें।

× × × ×

बल - विद्या के वैभव के
सब हों समान अधिकारी,
कम हो न किसी से कोई
अनपढ़ा - पढ़ा - नर - नारी।

जन जन के मंजुल मन में
वह भव्य भावना जागे,
अपनी आपाधापी का
अब राग न यों अनुरागे।

यह घोर घिनौने पेशे
कर सकें न अब कन्यायें,
नारीत्व नसा कर अपना
बन सकें न अब वेश्यायें !

नारी - स्वातंत्र्य सुझा कर
नर की बुनियाद बढ़ायें,
श्रमकार सुखी हों जिसमें
आओ वह विश्व बसायें !

× × × ×

मज़हब के अमिल अड़ंगे
अब और न लगने पायें,
यह रस्म बुरे - बेढंगे
अब और न ठगने पायें !

पादरी - पुजारी - मुल्ले
हिल मिल कर मेल बढ़ायें,
यदि मेल न सम्भव समझें
इस दुनिया से हट जायें ।

चेता चमार के घर मे
बनवारी ब्राह्मण खायें,
बनवारी की कुल-कन्या
चेता के घर में जायें !

मानव के निर्मल नाते
कटुता न कहीं फैलायें,
श्रमकार सुखी हों जिस में
आओ वह विश्व बसायें ।

× × × ×

हाँ, सब के लिये सुलभ हों
उन्नति के अवसर सारे,
जो जिस में सुविधा समझे
वह उस में बल विस्तारे।

पर-वशता के बंधन में
कोई न किसी को बाँधे,
गलहार गुलामी डाले
कोई न किसी के काँधे !

कानूनों की छाया में
हठ करें न यों हत्यारे,
उपहार प्रकृति प्यारी का
समता से सेवें सारे !

ऊँचे चढ़ - चढ़ कर कोई
निचलों पर बोझ न ढायें,
श्रमकार सुखी हों जिस में
आओ वह विश्व बसायें ।

× × × ×

कोई न किसी के घर में
अपना व्यापार बढ़ाये,
कोई न किसी के श्रम से
अब साहूकार कहाये ।

दुखदायी दानवता का
दुनिया से दिया बुझा दें,
सुखशाली साम्य - सुधा से
सत्वर संसार सजा दें ।

सुख में सम भाग सभी का
दुख में सम भाग सभी का,
सब के हित में हित सब का
सब में अनुराग सभी का।

नागरता के अनुरागी
अब और न पिसने पायें,
श्रमकार सुखी हों जिस में
आओ वह विश्व बसायें।

× × × ×

सीमा-संघर्ष बढ़ा कर
होती हो अब न लड़ाई,
जाये न ज़बरदस्ती से
भाई से भिड़ने भाई!

नित नयी लड़ाई लड़ कर
मानवता त्रास न पाये
श्रमिकों की कठिन कमाई
सागर में अब न समाये!

कृषकों का दाना-दाना
छिन छिन कर कहीं न जाये,
बिन मौत उन्हें मरने का
दुर्दृश्य न यह दिखलाये!

अपनी अपनी चिन्ता में

मरता हो जहाँ न कोई,

अपने अपने हित की ही

करता हो जहाँ न कोई।

छाया - माया के मग में

कवि जहाँ न जायें - आयें,

नंगा शृंगार सजा कर

सामन्तों को न रिझायें।

श्रीमानों की ड्योढ़ी पर

कविता न बलायें लेवे,

कुलटा की कला दिखा कर

अब 'कला' न तन - मन देवे !

पशु - पन्छी, पर - वश प्राणी

अब और न पीड़ा पायें,

निर्दयी - निठुर हाथों से

नित मार न इतनी खायें !

पर - वशता की पीड़ा पर

समता का लेप लगायें,

श्रमकार सुखी हों जिस में

आओ वह विश्व बसायें !

× × × ×

स्वागत हे भूख भवानी !

सचराचर सृष्टि समानी
नित नूतन परम पुरानी,
सुख, शोक उभय उपजातीं
स्वागत हे भूख भवानी !

जड़ - जंगम के जठरों में
अपना वर वास बनाकर,
रख छोड़ा देवि ! न किस को
तुम ने निज दास बनाकर ?

दुनिया के आदिम दिन से
यह यज्ञ तुम्हारा जारी,
संसार सभी 'समिधा' है
'होता' हैं सब संसारी ।

जो कुछ है यहाँ तुम्हीं पर
सब स्वाहा होता रहता,
जिह्वा में सजनि! तुम्हारी
ज्वालामुख सोता रहता।

तुम राजा-रंक सभी को
अपना आतंक दिखातीं,
तुम देवि! सदा दोनों से
अपना सत्कार करातीं।

दुबलों को दरश न देतीं
सबलों में चढ़ चढ़ जातीं,
यह बेढब बान तुम्हारी
श्रमिकों को नाच नचातीं!

श्रमकारों की कुटियों में
दूना दुख-द्वन्द्व दिखातीं,
श्रमहीनों के महलों में
जाने क्यों लज्जा लातीं?

चूरन की चाट लगाकर
आवाहन करें तुम्हारा,
तुम एक झलक दिखलाकर
कर लेतीं शीघ्र किनारा!

जो तुम्हें भगाना चाहें
तुम उन पर चढ़ चढ़ आतीं,
जो तुम्हें बुलाते फिरते
तुम उनसे अरुचि दिखातीं !

कुछ से वैराग्य बढ़ाकर
कुछ से अनुराग दिखाकर,
दोनों दुविधा में डाले
तुम ने निज दास बनाकर !

कानून कड़े सत्ता के
कर सकते कुछ न तुम्हारा,
सब शस्त्र धरे रह जाते
ज्यों ही तुम ने ललकारा !

प्राबल्य तुम्हारा पाकर
मन - बुद्धि विकल हो जाते,
बस एक रटन रहती है—
खाते, खाते, कुछ खाते !

× × ×

रोटी की राम - कहानी —

वह कौन जिसे बिन पाये
निस्तार नहीं इस तन का,
चलता है जिस के बल से
व्यापार सभी जीवन का ?

वह कौन जिसे बिन पाये
बेकार खज़ाना धन का,
जिस के बिन सूना लगता
अम्बार बड़ा कंचन का ?

वह कौन जिसे बिन पाये
तन - मन में रहे उदासी,
नित जिस के लिये भटकते
योगी - भोगी - सन्यासी ?

वह कौन जिसे बिन पाये
दुनिया का रज्या न भाता,
जिसका वह रूप निराला
ज्ञानी का ज्ञान गुमाता ?

वह कौन जिसे बिन पाये
'तुक' मिलती नहीं मिलाये,
जिसका शुभ दर्शन पाकर
कवि ! कहते कबित सुहाये ?

वह कौन जिसे पाते ही
रहता न कहीं कुछ पाना,
चलता है जिसके बल से
दुनिया का ताना - बाना ?

वह कौन तनिक - सी हो कर
तन - मन की कली खिलाती,
मुँह में जाते ही जिसके
काया में रंगत आती ?

वह कौन बँधे हैं जिस के
बंधन में तपसी - त्यागी,
जिस की माया में मरते
नित रागी और विरागी ?

वह कौन कराती सब से
धंधा नित नीचा ऊँचा,
फिरता है जिस के पीछे
व्याकुल हो विश्व समूचा ?

वह कौन ? वही वह रोटी
नित नयी - नयी पर छोटी,
जिसका शुभ सेवन करके
रहती यह काया मोटी।

रोटी के चार नेवाले
जब मुँह के भीतर जाते,
खुल जातीं जब यह आँखें
तब पीतर - देव दिखाते ।

सब प्रश्नों का परदादा
यह रोटी - प्रश्न अकेला,
नित सब को नाच नचाता
हों आप गुरू या चेला ।

चढ़ आतीं भूख भवानी
जब लेकर लश्कर सारा,
रोटी की तोप न लाकर
तब कौन बचा बेचारा ?

धनवान इसे क्या जाने
जिस पर है छाया धन की,
वह बाँझ कहाँ अनुमाने
यह पीर प्रसूती - तन की ?

सम्राट इसे क्या जाने
नित भूख जिसे वैभव की,
पल्हड़ तक पहुँच कहाँ है
भूखों के रोदन - रव की ?

कवि कहाँ इसे लख पायें
द्विज कहाँ इसे दरसायें,
आँखों पर चरबी जिनके
जो धनिकों के गुण गायें !

कह कह कर पार न पाते
ज्ञानी - ध्यानी मतिमानी,
कह पाये 'करुणा' कहाँ से
रोटी की राम - कहानी ?

× × ×

हे अन्न देव के दाता !

प्रतिपालक - प्राण - प्रदाता
वसुधा के भाग्य - विधाता,
हे नायक - दायक - दानी
हे अन्नदेव के दाता !

श्रद्धेय - सुधी - संचारी
हे विश्व - भरण - भंडारी !
महिदेव - देव - शिव - स्वामी
हे ग्राम - देव गुण - धारी !

हे हे पृथ्वी - पति प्यारे
परमार्थमना नित न्यारे,
हे हे किसान कृषिकारी
समता के सबल सहारे !

ग्रामीण - गुणी - गुरु - ज्ञानी
सात्विकता के अभिमानी,
हे स्रष्टा सस्य - सुधा के
हे दूध - दही के दानी !

हे पिता - पितामह - मानी
त्यागी - तपसी - हितकारी,
हे हलधर ! हे हलवाहे !
'सीता' - पति पाप - प्रहारी !

हम तेरे गुण - गण गायें
हम तेरे सुयश सुनायें,
तुझ - सा प्रत्यक्ष प्रभु पाके
हम किसको शीश झुकायें ?

तेरे गुण - गौरव गाकर
लेखनी प्रबलता पाती,
तेरा शुभ सुयश सुनाकर
नर - काव्य कला कहलाती !

तुम दो न कृपा कर प्यारे !
सुख - साधन न्यारे - न्यारे,
दुख - दावा से दहलाकर
जल जायें सरवर सारे !

विषमयी विषमता - बल से
सुख - साधन छीन तुम्हारा,
हा हन्त ! हुआ मानव ही
मानवता का हत्यारा !

यह ज़ुल्म ज़मींदारों का
छीना - झपटी बनियों की,
यह हाकिम की करतूतें
आपाधापी धनियों की !

यह चील और यह कौवे
यह गृद्ध और यह जोंकें
खा - खाकर काया कब से
हा ! तुम्हें ठठोरे ठोंकें !

ऐ काश ! कहीं पृथ्वी पर
प्राधान्य तुम्हारा होता,
दुख - दैन्य जगत से जाता
सरसाता सुख का सोता !

× × ×

हे हे महान मज़दूरो !

हे साम्य - सुधा - रस - रूरो !
हे श्रम - साहस - परिपूरो !
परिपोषक, प्रेम - पुजारी !
हे हे महान मज़दूरो !

हे हे अनन्य उपकारी !
हे सुख - साधन - संचारी !
व्यापक वैभव के दानी,
हे कलित कला - विस्तारी !

हे कामरेड कल - कामी !
नागरता के अनुगामी !
वैषम्य - व्यथा के बैरी !
हे हे समता के स्वामी !

हे कार्लमार्क्स के साथी !
लेनिन के सबल सहारे !
हे व्यापक ! विश्व-विजेता !
प्रतिभा के पोषक प्यारे !

× × ×

श्रम - संकट सभी सँभाले
किनकी यह कलित कलाई ?
किनके दम से दुनिया में
छवि - छटा अनूपम छायी ?

किसने पुल विपुल बनाकर
यह मंजुल मार्ग निकाले ?
दुर्गम, दुरूह सर - सागर
सब काल सुगम कर डाले ?

मीलों में सुपथ सजाकर
किसने यह नहर निकाली ?
किसके श्रम से सहरा में
हो रही अहा ! हरियाली ?

प्राणों की होड़ लगाकर
पाटे यह दलदल किसने ?
कर दिया कुसाहस करके
जंगल में मंगल किसने ?

सड़कों के प्रति पत्थर में
किसका गुण गूँज रहा है ?
तारों के हर खम्भे में
किसका श्रम सूझ रहा है ?

 —समसा

पुतली घर का प्रति पुरज़ा
किसका गुण - गौरव गाता ?
मीलों का कोना - कोना
किसका नित सुयश सुनाता ?

ऊँची चिमनी से चलकर
आतीं यह किसकी आहें ?
अम्बर में उफ़ - उफ़ करतीं
किसकी यह करुण कराहें ?

सीटी के संग जग हो
जाती यह किसकी सेना ?
मैले - माड़े चिथड़ों में
लटकाकर लोन - चबेना ?

जलयानों की जेटी का
किसने कुल भार सँभाला ?
किसने निज रक्त सुखाकर
जन - जन में जीवन डाला ?

'उस पार' तुम्हें पहुंचाता
कवि ! कौन भरे भावों में ?
किस का श्रम साँसें भरता
नभ - चुम्बी प्रासादों में ?

'ओ कुली ! कुली !' कहते ही
यह कौन लपकता आता ?
सारा लगेज ले ले कर
यह कौन लचकता जाता ?

बैठे हैं बाबू ! जिन में
चरबी का बोझ बढ़ाकर,
यह कौन जुता रिक्शों में
टन्-टन् टल्ली टनकाकर ?

दाँतों में अंगुल देकर
हम देख जिसे दहलाते,
उस ताजमहल के तल से
किन के स्वर सर्द सुनाते ?

यह कोट-किले, गढ़-गारें
यह मठ-मस्जिद-मीनारें,
सम्भव हैं किनके श्रम से
महलों की कलित कतारें ?

मल-मूत-भरे भवनों को
जो बज-बज कर बुँबुवाते—
धो धो कर कौन सकारे
लाखों की छूत छुड़ाते ?

[करते उसीर - छाया में
लाखों के वारे - न्यारे]
दिन दिन भर पंखा खींचें
यह कौन कुली बेचारे ?

भैंसों से होड़ लगाकर
यह कौन घसीटें ठेले ?
निज रक्त पसीना करके
सौ - सौ मन माल ढकेले !

भट्ठे में भुन भुन कर भी
यह इंजन कौन चलाता ?
हा हन्त ! उसी के नीचे
यह कौन कभी कट जाता ?

अति ऊँचे शैल - शिखर का
करते तुम सैर - सपाटा,
मर मर कर कौन कहाँ से
पहुँचाता ईंधन - आटा ?

× × ×

यह कौन कलम घिस घिस कर
बस्तों का बोझ सँभालें ?
अक्षर से आँख लड़ाकर
बिन काल बुढ़ापा पालें !

नित पाण्डु - लेख पढ़ पढ़ कर
बन बैठा पाण्डु अभागा !
किसने यह ग्रन्थ गठीला
कम्पोज़ किया मुँहमाँगा ?
उन दैत्याकार कलों पर
प्राणों का दाँव लगाकर,
किसने यह पुस्तक छापी
इतना सौन्दर्य सजाकर ?

× × ×

कुल काम खरे या खोटे
—जिन से अवलम्ब हमारा—
हो रहे, हुए या होंगे
किसके बल - विक्रम द्वारा ?
यह धन्य सुधी श्रमकारी
महिमा इस की नित न्यारी,
किसका न हृदय हुलसाती
इसकी श्रम - सेवा सारी !
क्यों इसको शिर न झुकायें
जय जय न कहें क्यों इसकी ?
इसके गुण - गीत न गाकर
कवि ! कहें कथा हम किसकी ?

× × ×

—तमसा

धनि धनि मजूर महिलाओ !

वाचक ! वंचकता तज कर
नय - न्याय - नवलता लाओ,
सब कहो हृदय हुलसा कर-
धनि धनि मजूर महिलाओ !

इनका ही गौरव गाओ
इन का ही सुयश सुनाओ,
बोलो सब ऊँचे स्वर से-
धनि धनि मजूर महिलाओ !

कविराज ! यहाँ कविता की
सार्थकता कुछ कर जाओ,
कर काव्य - समर्पण, कह दो-
धनि धनि मजूर महिलाओ !

माना यह घोर घिनौनी
माना यह मैली - माड़ी,
विकराल वदन में इन के
चमके न चिकन की साड़ी।

कंकाल कलेवर इन का
माना कि महा मैला है,
इन की दूभर दुनिया में
दारिद्र्य फला फैला है।

रसना में 'रम्य' न इन के
चितवन वह यहाँ न बाँकी,
हाँ, यहाँ 'दरिद्र नारायण'
देते निज उज्वल झाँकी!

इन के सम कौन दुखी है
कर के भी कठिन कमाई?
यदि राम न इन में रमता
तो कहीं न रमता भाई!

परिताप पड़ोसी इन का
चिन्तायें सखी - सहेली,
मजबूरी मोद बढ़ाती
इन की नित नयी - नवेली!

 —तमसं

कितना दुख - द्वन्द्व इन्हें है
कब किया किसी ने लेखा ?
कितनी न उपेक्षा कर के
दुनिया ने इन को देखा !

इन की अनूप सेवा का
फल मिला महा मजबूरी !
भर पातीं पेट न पापी
कर जीवन भर मज़दूरी !!

× × × ×

निज रूप कुरूप बना कर
कुछ बच्चे संग लगा कर,
यह कौन दरें नित दाना
दिन - दिन भर पेट खला कर ?

पल पीढ़ी - ओर निहारे
पल शिशु में ध्यान लगाती,
यह कौन प्रसूता कल की
ईंटों का भार उठाती ?

जम - तुल्य जमादारों की
अश्लील हँसी सहकर भी,
यह कौन बुहारे बाड़ी
दिन भर भूखी रहकर भी ?

मल - मूत - भरे बर्तन को
लटका कर कौन सवेरे,
कंधे पर बाल उठाये
देती है घर - घर फेरे ?

यह कौन तनिक पैसों पर
दाया - आया बन आती,
अपनों को दूर हटा कर
गैरों को गोद खिलाती ?

प्रासादों की परियों के
नित पीकदान धोकर भी,
यह कौन कुबातें सुनती
उनसे सुयोग्य होकर भी ?

दिन भर बेगार बजाकर
बदले में गाली खाकर,
यह कौन सिसकती जाती
मुट्ठी भर नाज न पाकर ?

दो दो आने में अपना
निर्मल नारीत्व नसाकर,
यह कौन खुली खिड़की से
झाँके चेहरा चमकाकर ?

छाती में बाल छिपाये
यह कौन चलाती चक्की,
ले भार गर्भ का भारी
पीसे नित मन - मन मक्की ?

ज्वाला - सी जेठ - दुपहरी
बालू से बजरी छाँटे,
रोटी को देख ठुनकते
यह कौन सुतों को डाँटे ?

यह कौन कड़ा श्रम करके
कम से कम वेतन पाती,
इतने अबोध बच्चों को
अक्षर - अभ्यास कराती ?

अन्याय - अनय के युग का
यदि अन्त यहाँ से होता,
यह श्रमिक जनों की जननी
क्यों खाती गम का गोता ?

× × ×

कुछ कंकालों की झाँकी—

कवि ! देख चुके चितवन तो
वह 'मधुबाला' की बाँकी,
आओ अब तुम्हें दिखायें
कुछ कंकालों की झाँकी !

× × × ×

नागरिक निपुण नेताओ !
देखो यह मरघट भारी,
जल रही जहाँ सदियों से
यह मानवता बेचारी !

हे सुगम सुधारक ! देखो
नर का यह नाश निराला,
दानवता के हाथों से
मानवता का दीवाला !

मज़हब के ठेकेदारो !
देखो यह दुर्गत सारी,
नाचती जहाँ नित नंगी
यह पर-वशता हत्यारी !

देखो हे सत्ताधीशो !
अपनी करतूतें काली,
किस तरह महा मानव की
हत्या तुम ने कर डाली !

सम्राट कहाने वालो !
आओ अब तुम भी आओ,
अपने काले कर्मों का
लेखा यह लखते जाओ !

हाकिम बन बन कर हम पर
हे हुक्म चलाने वालो !
कुछ हाड़ बचे हैं बाकी
आओ अब इन्हें चबा लो !!

गोरी चमड़ी के नीचे
काला दिल रखने वालो !
भर गया घड़ा पापों का
लो अब तो इसे सँभालो !!

× × × ×

यह दीन - दुखी देहाती !

यह कौन कहाँ का प्राणी ?
किसने इसको उपजाया ?
यह सृष्टि उसी स्रष्टा की
या कंगाली की छाया ?

देकर सुख - साज सभी को
लेकर कष्टों की थाली,
फिरता है पेट खलाये
यह दीन - दुखी देहाती !

आश्रित है जीवन जग का
जिस के कर्मठ हाथों पर,
शव पड़ा उसी केशव का
सड़कों पर, फुट-पाथों पर !

× × × ×

दुख का अम्बार उठाये
दिन भर यह दौड़ा करता,
क्या जाने किस चिन्ता में
यह मौत बिना नित मरता!

सिकुड़ी सब खाल बदन की
कंकाल खड़ा है तन का,
किस निष्ठुर ने सौंपा है
जंजाल इसे जीवन का ?

यह देख दिगम्बर चोला
किसका न हृदय दहलाता !
समसान कहाँ है इसका ?
यह क्यों बस्ती में आता ?

क्या जाने इस ढाँचे में
अब साँस किधर से आती ?
यह और न यों दुख पाता
यदि आज यहीं रुक जाती !

मरने की साध मनाकर
कब का यह जीता जाता !
क्या काल कहीं भूला है
या देख इसे दहलाता ?

इसकी यह करुणा कहानी
क्योंकर कोई कह पाये ?
उपजा है कौन चितेरा
जो इसका चित्र बनाये !!

× × × ×

दुख - दैन्य - दुराशा - दुबिधा
इसके कुछ साथी - संगी !
चिर चिन्ता हत्यारी की
इसको न कभी कुछ तंगी !!

जिस - तिस के घूँसे - गाली
खा - खाकर खूब अघाता,
यदि पेट रहा कुछ खाली
तो ऊपर से गम खाता !

सुख - चैन किसे कहते हैं
इसने न कभी यह जाना,
है साध यही जीवन की
भर - पेट किसी दिन खाना !

दो - तीन चने - बेभर की
यह दूजे - तीजे पाता,
बस इन के लिये लगाया
जीवन से इस ने नाता !

क्यों हीन हुआ है इतना
क्यों फिरता पेट खलाये,
किसने इसका सुख छीना
यह कौन इसे समझाये ?

यह भार हटे जीवन का
यदि मौत मिले मुँह - माँगी,
क्या जाने किस कोने में
अटकी है जान अभागी !

सुनता है कौन किसी की ?
किसको निज कष्ट सुनाये ?
है कौन यहाँ अब इसका
किसकी यह आस लगाये !

× × × ×

यह ग्राम-वधू हतभागी !

ज्यों - त्यों निज लाज बचा ले
यदि मौत मिले मुँह - माँगी,
फिरती है आह ! उघारी
यह ग्राम - वधू हतभागी !

यह शील - सुधा की झाँकी
शुचिता की पुण्य पिटारी,
किन पापों का फल पाती
फिर कर यों मारी मारी ?

चिथड़ों के बीच बँधी है
इस की यह कोमल काया !
सुकुमारी इसे बना कर
बिधना ने क्या फल पाया ?

यह फटी - पुरानी कुरती
यह बाल बिना रस रूखे !
दुख - दैन्य भरी चितवन में
मुखड़े यह सूखे - सूखे !!

सारे अभाव मिल जुल कर
आ बसे इसी के तन में !
चिन्ता की नित्य चिता - सी
जलती इसके जीवन में !!

जो ऊन - रुई उपजाता
यह उस किसान की नारी,
लाखों की लाज बचाती
फिरती पर आप उघारी !

किस क्रूर - कुटिल ने इस को
यों दुख - दारिद में फेंका ?
सारे संकट सहने का
क्या लिया इसी ने ठेका ?

सुख - साधन एक न पाती
सुविधायें नेक न पाती,
क्या इसके बाँट पड़ी है
केवल कष्टों की थाती ?

विधना ने जिसे बताया
निज रूप - छटा छिटकाना,
हा हन्त ! असम्भव उस को
अपनी अब लाज बचाना !

दिन - रात कड़ा श्रम करके
कितना नित रक्त सुखाती !
मिट्टी में मिल मिल कर भी
भर - पेट न भोजन पाती !!

चक्की - चूल्हे से पाया
ज्यों ही इसने छुटकारा,
खलिहानों में, खेतों में
पति का तब यही सहारा ।

ससुराल इसे है कारा
नैहर है नरक-नज़ारा !
क्या यों ही व्यर्थ बिताना
इसको यह यौवन प्यारा ?

कब तेल-फुलेल लगाये
क्या भूषण - वस्त्र बनाये,
अवकाश कहाँ मरने का !
कब यह श्रृंगार सजाये ?

दिखती है देह घिनौनी
भरपूर न पाकर पानी !
शूकरियों से बढ़कर है
क्या इसकी जरठ जवानी ?

× × ×

औलाद कहाँ है इसके,
विपदा है केवल भारी,
दूना दुख - दैन्य दिखाती
इस की यह सेना सारी !

रोटी को एक ठुनकता
रोगी हो एक पड़ा है !
बेकार बड़ा बल कर के
छाती में एक अड़ा है !!

'मधुबाला' के वर्णन में
कितनी न कला दिखलाते !
कवि ! एक बार इस पर भी
करुणा की दृष्टि दिखाते !

× × ×

यह बाल - कृषक बेचारे !

किन क्रूर - कुटिल हाथों से
सह सह कर संकट सारे,
सदियों से सूख रहे हैं
यह बाल - कृषक बेचारे ?

यह औंधी आँखों वाले
यह पिचके गालों वाले,
किन पापों का फल भोगें
यह रूखे बालों वाले ?

इन के दादा की धरती
धन - धान्य जहाँ सब होते--
गेहूँ की कौन चलाये
यह बेझर के बिन रोते !

इनकी गौ - भैंस बहाती
घृत - दुग्ध - दही की धारा,
क्या जाने किन्तु किधर से
बह जाता गौरस सारा !

वह देखो श्वान किसी के
नित बिस्कुट - दूध उड़ाते,
यह देखो बाल किसी के
नित रोटी को रिरिआते !!

करती कुरूप तन इन का
कुरती यह मैली - मोटी,
लज्जा को लाज लगाती
इन की यह लूस - लँगोटी !

दिन - रात कड़ा श्रम कर के
निज रक्त सुखाना पड़ता,
इन धूल - भरे हीरों को
बिन मोल बिकाना पड़ता !

यह खेल - कूद के दिन थे
यह थी बनने की बेला,
श्रम - संकट के सागर में
दारिद ने इन्हें ढकेला !

यह गोबर - मूत सकेलें
यह डाँगर - ढोर ढकेलें,
इस नन्हीं - सी काया पर
यह क्या क्या कष्ट न झेलें !!

शिक्षा के मोल मिली है
इन को कुछ गंदी गाली !
यह बिगड़ें या बन जायें
इन की न कहीं रखवाली !!

अवकाश कहाँ है इतना
कब लिखने - पढ़ने जायें,
ज्यों - त्यों कर जीना जिन को
वह 'फ़ीस' कहाँ से लायें ?

शैशव है शाप इन्हें लो
संताप इन्हें तरुणाई !
बिन काल बिदा होने की
इन को न कभी कठिनाई !!

अपने भागों जीना है
अपने भागों है मरना,
बहलाव यही तन - मन का
ज्यों - त्यों यह झोंझर भरना !

साबुन की कौन कहानी
भरपूर न पाते पानी,
शृंगार सदा करने को
क्या धूल मिली मनमानी !

× × × ×

भर - पेट कभी भोजन भी
रूखा - सूखा यदि पायें,
चौगुने धनी - धंगड़ को
धर पटकें, धूल चटायें ।

प्रासादों के पल्हड़ क्या
इन की तुलना में आयें ?
यह तनिक सुभीता पाकर
बहुगुना विभव विकसायें ।

इन धूल - भरे हीरों में
स्टालिन - से सुभट समाये,
इन खानों से खन खन कर
लेनिन - से योद्धा आये !

कवि ! कोर कभी करुणा की
इन के ऊपर भी करते,
कलियों के कुम्हलाने से
तुम इतनी आहें भरते !

× × × ×

कृषकों की करुण कथायें—

किस पोथे में प्रकटायें

किस छापे में छपवायें,

किस कविता में कह पायें

कृषकों की करुण कथायें !

× × × ×

सब के सुख-साज सजा कर

सब के दुख-द्वन्द्व हटा कर,

हा ! अन्न बिना मरते हैं

हम अन्न अमित उपजा कर !!

'उत्तम खेती' कह कह कर

परिहास करो क्यों भारी,

हम हीन-अधम हो बैठे

कर के नित खेती-क्यारी !!

नित रक्त सुखा कर अपना
हम हैं रीते के रीते !
खेतों में खपते खपते
हा हन्त ! हमें जुग बीते !!

दुनिया में और कहीं है
इतना अंधेर विधाते !
जो अन्न अमित उपजायें
वे अन्न बिना मर जाते !!

वर वेष दिगम्बर पाया
तरु - तल में बास बनाया,
बन बैठे विकट विरागी
कर कर उपास मनभाया !

बरसा बिन बीज गँवाया
ब्यौहर ने बैल बँधाया,
क्या करें, कहाँ से खायें
'कर' देने का दिन आया !

घृत - दुग्ध - दही - दौलत की
छोटे मुँह बात बड़ी है,
हम हीनों के खातिर तो
रूखी रोटी रबड़ी है !

सर सूखे पर पंछी भी
उड़ और जलाशय जायें,
यह हूले - डंखर तज कर !
हम कहाँ किनारा पायें ?

हतभाग्य बिलमते ! तू ने
क्या क्या न अनर्थ. कराया,
नव सेर मिला जो हम को
अब सोलह सेर बिकाया !

दुख दे दरिद्र दे तू ने
रे दैव ! न क्या दे डाला ?
बिन काल इन्हीं के बल से
कट जाता कष्ट - कसाला !

सुनते हैं श्वान तुम्हारे
नित दुग्ध - जलेबी खाते,
हतभागी बाल हमारे
रूखे कुछ कौर न पाते !

क्यों कृषक यहाँ उपजाकर
विधना ! यह विश्व बिगाड़े,
देता न जिन्हें निर्दय ! तू
टुकड़े कुछ मोटे - भाड़े !!

कुछ कंथड़ फटे - पुराने
कुछ बासन झाँझर - झीने,
अपने ऋण में मुकताये
कुड़की कर आज किसी ने !

चढ़ आतीं भूख भवानी
नित लेकर सेना सारी,
मर कर भी 'खेत' न त्यागें
हाँ, हम ऐसे बल - धारी !

हल के बल जो हल करती
नित पेट - पहेली प्यारी,
बलि जायें कृषक - भुजा पर
भुजदण्ड भटों के भारी ।

परिहास करें, मुसकायें
सुनकर यह करुणा कथायें,
ऐ काश ! इसी ज्वाला से
सब जल जल कर मर जायें !

× × ×

यह कौन कहे बिन खाये
श्रमकार - कृषक मर जाते ?
क्या गम की गर्म गरी से
नित गाली - मार न खाते ?

अति वर्षा कहीं अवर्षा
ओले - पाले की मारें,
संहार करें खेती का
कपियों की कहीं कतारें !

रक्षक भी भक्षक बन कर
तक्षक - से फन फैलाते !
सुख - चैन 'अमन - आमा' की
चरचा क्यों व्यर्थ चलाते ?

तीजे - चौथे दिन पायें
रोटी अधपेट अभागे,
खटमैल - मसक - चीलर ने
आवास यहीं अनुरागे !

दे दे कर कष्ट - कसाला
बिन वस्त्र बढ़ा यह पाला,
रूखे - सूखे हाड़ों में
गड़ गड़ जाता ज्यों भाला !

जठराग जलाया करती
पीड़ा पनपाया करती,
यह बैरिन बढ़ी बुढ़ाई
कंकाल कँपाया करती !

× × ×

इन सड़ी-गली लीरों को
चुटकी में पकड़ न पायें,
क्या करें कहाँ तक जोड़ें
कैसे कंथा सिलवायें ?

मल-मूल-भरे बुँबुवाते
जूँ-चीलर चूते जाते,
बह जायें सूत न सारे
धोबी न इन्हें धो पाते !

दिन-रात कमाकर मरते
हटती न छुधा हत्यारी,
क्या करें, कहाँ से लायें
पटवारी ! भेंट तुम्हारी ?

कानून - कचहरी - थाने
धनिकों के ठौर - ठिकाने,
सुनता है कौन हमारी ?
हम को अपने बेगाने !

क्यों छूट - तकावी देकर
बिन मौत हमें मरवाते ?
नित नये सिपाही - सहना
जिन के मिस आते जाते।

पड़ती न किसी के कानों
पीड़ित की प्रबल पुकारें,
वन - रोदन बन बन जातीं
कृषकों की गरम गुहारें !

यह जुल्म ज़मींदारी का
बनियों की बटमारी का,
नित बोल यहाँ बाला है
पर - वशता हत्यारी का !

परिताप यहाँ पछताता
लज्जा है यहाँ लजाती,
दुख - दारुणा देख यहाँ का
रौरव की फटती छाती !

× × ×

यह दुनिया मज़दूरों की—

वैषम्य - व्यथा में बँध कर
कुविधा से कुछ क्रूरों की,
सुख - साधन - हीन हुई है
यह दुनिया मज़दूरों की !

× × ×

सुख अत्याचार - अनय में
न्यायी - नियमी दुख पाते,
पूँजीपति और श्रमिक के
व्यवहार यही बतलाते !

श्रमकारों को झोपड़ियाँ
श्रम - हीन महल के बासी,
नय - न्याय - नवलता - नरता
सब की यह खिल्ली खासी !

क्यों धर्म धर्म चिल्लाकर
कानों को बधिर बनाते ?
श्रमकार सदा दुख भोगें
प्रतिकार न तुम कर पाते !

क्या कलि की कथा सुनाते
क्या कर्म - दोष दिखलाते,
श्रमकारों का दुख - दाता
वैषम्य न यह् लख पाते ?

'कुटिलों से शंका सब को'—
बेजा न बड़ों की बातें,
हम सीधे - सरल न होते
क्यों खाते सब की लातें ?

द्विजदेव ! किसे सिखलाते
व्रत - संयम के सुख सारे ?
नित एकादशी बने हैं
तीसों दिन यहाँ हमारे !

कितने प्रताप से पायी
मानव की मंजुल काया,
पाकर न कहीं दो रोटी
हा हन्त ! इसे बिलखाया !!

नित नर्क - व्यथा बतलाकर
क्यों व्यर्थ हमें डरपाते ?
जठरानल से जल जल कर
हम जीवन - ज्ञान गँवाते !

क्या करना कावा - काशी
क्या पाना पंच - पुटी में,
दीखे न दरिद्र - नारायण
दुखिया की करुण कुटी में ?

× × × ×

यह विश्व - विभूति हमारी
हम हैं व्यापक बलधारी,
एका के गहन गुणों में
बँध सकें कहीं श्रमकारी ।

'श्रमिकों की विपुल व्यथा का'
हो अन्त कहाँ से भाई !
एका का अस्त्र अनूठा
देता न जिन्हें दिखलाई !

सुख - साधन श्रमिक सभालें
'श्रमहीन न सुविधा पायें'—
सच्चे 'सुधार' की बातें
बस दो ही हमें दिखायें ।

श्रमिकों के हाथों होती
यदि बंज - व्यवस्था सारी,
कौड़ी के तीन कहाकर
क्यों फिरते आज अनारी ?

× × × ×

कितने न 'कमीशन' आये
नित नये 'सुधार' सुझायें,
वह शासन दूर अभी है
श्रमकार जहाँ सुख पायें !

जब तक 'श्रम' और 'उपज' का
होता सम भाग नहीं है,
बल कर क्यों व्यर्थ बुझाते
बुझती यह आग नहीं है ।

क्यों लाल लगाये कोई
श्रमकारों के माथों में,
शासन का सूत्र सँभालें
यदि यह अपने हाथों में ।

—समसा

बढ़ गये बदौलत जिन की
यह दौलतमंद कहाकर,
संहार उन्हीं का करते
गन - गन गोली बरसाकर !

तुम अपनी द्रव्य लगाकर
लाखों का लाभ उठाते,
हम अपनी जान लड़ाकर
केवल कुछ पैसे पाते !

गुलगुले गदेले दलकर
तुम बने फिरो गुल्लाला,
हम अपना रक्त सुखाकर
नित करें कलेवर काला !

हम से ही मोटे बन कर
हम को दुतकारा करते,
हम माँग रहे हों रोटी
तुम पत्थर मारा करते !

चाँदी के चन्द टकों का
तुम इतना मूल्य लगाते,
लाखों के प्रिय प्राणों को
हम यों ही व्यर्थ बहाते !

लाखों का लाभ उठा कर
देते हम को कुछ पाई,
सदियों से हड़प हड़प कर
कितनों की कष्ट-कमाई !

यह धर्म तुम्हारा साथी
शासन है संग तुम्हारे,
बेबसी-विकलता-चिन्ता
केवल है हाथ हमारे!

क्या जाने श्रमिक-जनों की
कब होगी वह तैयारी !
क्या जाने किस दिन होगी
हड़ताल विश्व की भारी ?

× × × ×

रूसी श्रमिकों की झाँकी

कम्पास 'करुणा' का लेकर
निज दृष्टि बदल दो बाँकी,
दुर्भाव दुराकर देखो
रूसी श्रमिकों की झाँकी,

'लोहे के अङ्गों वाले'
स्तालिन के गुण - गण गाओ,
समता की लाल ध्वजा को
सब सादर शीश झुकाओ।

जय कार्लमार्क्स की कह कर
लेनिन का सुयश सुनाओ,
शुभ साम्य - सुधा से सिंच कर
रूसी श्रमिकों में आओ।

देखो यह श्रमिक वही हैं
जो सीधे - सरल कहाते,
धनिकों के धक्के खा कर
गम - गुस्सा पी पी जाते ?

कल यही लटकते दीखे
टंड्रा के बीहड़ बन में,
जब ज़ोर लगा जन - धन से
इन के ही उत्पीड़न में।

इन क्रान्ति - कुशल शूरों ने
कब हार किसी से खायी ?
भयभीत हुए किस भय से
यह समता के शैदाई ?

कितने न शिकंजे कस कर
सत्ता ने इन्हें सताया,
इन के सुकार्य - साधन में
कितना न अड़ंगा आया।

कितने न कैदखानों को
यह तोड़ तोड़ कर निकले,
जम - तुल्य जमादारों के
सिर फोड़ फोड़ कर निकले।

हाँ हाँ यह कैदी कल के
हैं आज बड़े बलधारी,
अब इन के बल - वैभव से
दहलाती दुनिया सारी

इन सूखे श्रमकारों ने
क्या काया - कल्प किया है !
अपनी चित - चेती कर के
दुनिया को सबक दिया है।

यह मर्द महान वही हैं
जिन से युग बदले जाते,
जो नवजीवन उपजा कर
सदियों की सड़न हटाते।

यह युग - परिवर्तन - कारी
यह साम्य - सुधा - संचारी,
व्यापक विप्लव के बानी
यह क्रान्ति - कला - विस्तारी।

पूँजी का पाप खपा कर
सत्ता का ताप हटा कर,
इन को सुख - सुयश मिला है
प्रिय पंच - प्रथा प्रकटा कर।

इन की छाया के नीचे
कल क्रान्ति फली - फूली है,
इन के दामन में दुनिया
दुख - दानवता भूली है ।

इन के शासन से सिंच कर
मानवता पनप रही है,
अब लगे विरोधी कहने—
'समता का साज सही है ।'

हाँ, आज यही शासक हैं
उस महा देश के मानी,
अब वहाँ न दर्शन देती
सामन्तों की शैतानी ।

पिस्तौलों से तड़पाया
वह ज़ालिम ज़ार इन्हीं ने,
दुनिया से दूर भगाया
वह अत्याचार इन्हीं ने ।

जनता का राज वहाँ है
समता का साज वहाँ है,
श्रमकार - कृषक की कितनी
ऊँची आवाज़ वहाँ है ।

श्रम - कारों की वह सेना
किस का न हृदय दहलाती,
किस का न कलेजा मुँह को
वह 'लाल फौज' है लाती !

हिटलर की हठ - धर्मी का
दुनिया से दिया बुझा कर,
कर दिया करिश्मा किस ने
नाज़ी को नाच नचा कर ?

योरप के कुल देशों की
सम्राज्य - शक्ति ला कर भी,
कर पाया बाल न बाँका
बर्बरता दिखला कर भी ।

कम्युनिस्तों के शासन का
संहार चले थे करने,
दुम दबा दबा कर भागे
हो हो कर मरने मरने ।

कम्मल का धोखा खा कर
वह रीछ पकड़ने दौड़े,
बन गाज गिरे गर्दन पर
यह हँसुए और हथौड़े ।

वह साम्यवाद बल - शाली
वह बीस बरस का बच्चा,
नाज़ी - दल के दानव को
खा गया चबा कर कच्चा ।

सदियों के 'सिंह' सयाने
इन का मुँह ताक रहे हैं,
यह 'भालू' बढ़ते आते
वह बगलें झाँक रहे हैं !

'दुनिया से दूर करेंगे
यह राज - तंत्र दुखदायी,
समता के भाव भरेंगे'
इन की यह कसम खुदाई !

समता - स्वातंत्र्य सजा कर
वह वैभव भर दिखलाये,
किस की मजाल है जग में
जो इन से आँख लड़ाये ?

इन के कामों में आती
अब इन की पाई पाई,
धनिकों की धींगा - धींगी
देती न वहाँ दिखलाई ।

यह दीख रही हैं किन के
भवनों की कलित कतारें ?
किनके बच्चों को ले कर
उड़ती आतीं यह कारें ?

यह कौन, रेडियो सुनते ?
यह कौन, पुस्तकें पढ़ते ?
यह कौन, भ्रमण करने को
नित नभयानों में चढ़ते ?

मन बहलाने को किन के
यह खुले सिनेमा सारे ?
किन को भोजन करवाते
होटल यह साँझ - सकारे ?

अखबार उलट कर करते
यह कौन कहाँ के चरचे ?
किन के भावों से भर कर
छपते यह लाखों परचे ?

शासन का सूत्र सँभालें
किन की यह सभ्य - सभाएँ ?
यह राज - दूत दुनिया के
किन के दर्शन को धाएँ ?

दुनिया भर के दुखियों से
कम्पास लगा है किन का ?
शोषक - सत्ता के तन में
अब त्रास लगा है किन का ?
सभ्यता और संस्कृति का
इतना सुविकास कहाँ है ?
मानव में मानवता का
इतना सहवास कहाँ है ?
पोथों की पंगु प्रथा में
जो कल्पित स्वर्ग सुनाया,
किन के बल - विक्रम द्वारा
दुनिया में आज दिखाया ?

× × × ×

रूसी श्रमिकों की जय हो
समता की विश्व - विजय हो,
सम्राटों की कब्रों पर
पूँजीपतियों का क्षय हो ।
रूसी श्रमिकों की जय हो
रूसी श्रमिकों की जय हो,
समता के पावन पथ पर
यह विश्व बढ़े निर्भय हो ।

× × × ×

ओ पागल हिन्दुस्तानी !

दुनिया की नीति निराली
तू ने न अभी तक जानी,
किस आशा में अटका है
ओ पागल हिन्दुस्तानी !

चालिस करोड़ के साथी !
बहुसंख्या के अभिमानी !
क्या भेड़ों से बढ़ कर हैं
यह तेरे सब सेनानी ?

ले ले कर अस्त्र अनोखे
वह देख न बाहर वाले,
चढ़ चुके, चढ़े आते हैं
तेरे ऊपर मतवाले !

वह आसमान में उड़ना
वह सागर - बीच बिचरना,
वह चन्द्र और तारों तक
जाने का उपक्रम करना !

वह तार बिना तारों का
अचरज की अंतिम सीमा,
वह क्रूर काल की किरणें
वह तोप भयानक भीमा !

वह भाफ़ और वह बिजली
वह गैस और वह गोले !
किस तरह लड़ेगा उन से
बतला ऐ भाई भोले ?

नित यंत्र नये निर्माकर
वह तुझे दबाते आते,
तू कमा कमा कर मरता
वह लूट लूट ले जाते !

तेरी धरती के ऊपर
अपना व्यापार बढ़ाते,
लाखों का लाभ उठाकर
तुझ को कंगाल बनाते !

बरसों से बहता जाता
बाहर यह तेरा सोना,
क्या स्वर्ण - विहीन बनेगा
भारत का कोना - कोना ?

वह फोड़क - नीति चला कर
आपस में तुझे लड़ाते,
तू लड़ लड़ कर मरता है
वह अपना विभव बढ़ाते !

तेरी दुधार गौवों को
नित काट काट कर खाते,
घी - दूध न पाकर पूरा
तेरे बच्चे मर जाते !

× × ×

यह ऊन - रुई यह गेहूँ
यह चर्म और सन तेरा,
क्यों यहाँ न रहने पाता
ले जाता कौन लुटेरा ?

क्यों हीन हुआ है इतना
किस किस ने तुझे दबोचा,
क्यों फिरता पेट खलाये
तू ने न कभी यह सोचा !

तेरा धन - धान्य उजड़ता
तेरी आँखों के आगे !
कितना ही तुझे जगायें
तू नींद न अपनी त्यागे !!

श्रमकार - कृषक यह तेरे
कृमि - कीट सरिस मर जाते !
उपचार पुराने तुझ को
हा हन्त ! अभी तक भाते !!

यह धर्म - कर्म के धंधे
यह किस्से और कहानी,
क्यों इनके भ्रम में भूला
ओ पागल हिन्दुस्तानी !

× × ×

क्यों धर्म इसे तुम कहते ?

नित बैर - बिरोध बढ़ा कर
जो बीज विषैले बोता,
जिस के बन्धन में बँधकर
कल्याण न कुछ भी होता—

एका के मधुर फलों का
जिसने संहार किया है,
करवा कर फाँसा - फोड़ी
दुखमय संसार किया है—

वर बन्धु - भाव विनसा कर
जिसने कटुता फैलाई,
जिसके कुचक्र में पड़ कर
भिड़ते हैं भाई - भाई—

आपस में मिल कर रहना
जिसको न तनिक भी भाता,
तू - तू - मैं - मैं मचवा कर
जो हरदम हमें लड़ाता—

'हम बड़े और सब छोटे
यह बात बुरी सिखलाता,
पर - वशता की पीड़ा जो
नित नयी - नयी पनपाता—

नित आड़ पकड़ कर जिस की
यह फूट फली - फूली है,
जो ढोंगी हमें बनाता
जिस में जनता भूली है—

कर दिया असम्भव जिसने
आपस में मिलकर रहना,
जो हरदम हमें सिखाता
उलटी बातों में बहना—

जिसकी छाया के नीचे
रक्षित है 'सत्ता' सारी,
जिस से निर्भयता पाकर
पलती पूँजी हत्यारी—

विज्ञान - विरोधी बनकर
जो रोके प्रगति हमारी,
जंजाल पुरानेपन का
अब तक है जिसमें जारी—

जनता की बुद्धि बिगाड़े
जो नीति निराली लेकर,
नामी नेता बनने का
'टोडी' को अवसर देकर—

× × ×

ब्राह्मण ने जिस के बल से
जनता की जीभ दबायी,
कर दिया सुरक्षित जिसने
यह राजतन्त्र दुखदायी—

महलों के अल्हड़ लड़के
'अवतार' बताये जिसने,
श्रमकारी शूद्र बना कर
सब तरह सताये जिसने-

× × ×

समता के पावन पथ में
जिसने निज टाँग अड़ा दी,
यह वर विकास विनसा कर
विषमयी विषमता लादी—

पाखण्ड पढ़ा कर जिसने
दे दिया बुद्धि पर ताला,
क्यों 'धर्म' इसे तुम कहते ?
यह तो 'अधर्म' का आला !

× × ×

हे हे द्विजवर दीवाने !

हे रूढ़िवाद के बानी
भारत के भूरे हाथी,
हे प्रगति - पराभव - कारी
सामन्तों के चिर साथी !
नूतन विज्ञान - विरोधी
हे जड़ता के अनुगामी,
भ्रमजाल बढ़ाने वाले
हे हठ - धर्मी के हामी !
हे शुभ सुधार के द्रोही
भू - सुर - से भव्य भिखारी,
थोथे पोथों के पंथी
हे हे धर्म - ध्वज - धारी !
हे ऊँच - नीच के नेता
हे ढोल ढके ढोंगों के,
पाखंडों के पोषक हे !
हे पूज्य पुरुष पोंगों के !
दिखला कर पोथे - पत्रे
अन्याय करो मनमाने,
मुँह - मिट्ठू स्वयम् स्वयम्भू !
हे हे द्विजवर दीवाने !

× × ×

—तमसा।

मठ-मंदिर और शिवाले !

द्विज देवों ने जब देखी
दूकान न अपनी चलती,
पोथों की ब्रह्म - बगीची
उतनी न फूलती - फलती,

जंगल से टाट उठा कर
वह बस्ती में आ धमके,
उन के वह पोथे - पत्रे
महलों के नीचे चमके।

वह वास वनों का तजकर
नगरों में डेरे डाले,
धनपतियों से बनवा कर
मठ - मंदिर और शिवाले !

अब और विपिन में रहना
मानों न धर्म को भाया,
पूँजी के पास पहुँच कर
सत्ता से स्नेह लगाया !

मठ - मंदिर में तीनों का
गँठ - बंधन होना ठहरा,
धन - धर्म और सत्ता का
नित सुख से सोना ठहरा !

'तुम रक्षा करो हमारी
हम रक्षा करें तुम्हारी'—
अत्याचारी से मिल कर
बल पाये अत्याचारी !

तीनों का लक्ष्य निराला
तीनों के छिद्र छिपाना,
जनता की जीभ दबा कर
वैषम्य - व्यथा फैलाना !

सत - रज - तम तीन गुणों का
गँठबन्धन कर मनभाया,
द्विज देवों ने दुनिया को
मंदिर का मोह दिखाया !

× × × ×

पूँजीपति ने जब देखा
भर गया घड़ा पापों का,
जनता के हाथों होगा
लेखा इन संतापों का—

श्रमिकों का शोषण कर के
कुछ कुधन कहीं से पाया,
जनता से 'जस' पाने को
झट मन्दिर एक बनाया !

× × × ×

शासक सामन्त कहीं का
जब निकला आत्याचारी,
बन गया विरोधी सब का
कोई न रहा हितकारी—

झट मंदिर एक बनाकर
अपना वह पाप छिपाया,
भोंदू 'भगतों' के द्वारा
जनता से सुयश कमाया !

× × × ×

मंदिर में मौज उड़ाता
अब धर्म रँगीला बन कर,
शोषक सत्ता के तल में
भारी भड़कीला बनकर !

वह पत्थर का परमेश्वर
इनमें नित सोता रहता,
जो 'अटका' इसे चढ़ाते
उन के दुख धोता रहता।

शासन का संग इसे है
सत्ता का इसे सहारा,
क्यों धर्म न सुख से सोता
बन कर पूँजी का प्यारा !

× × ×

मठ-मंदिर की माया ने
क्या क्या न अनर्थ कराये !
पर-बंधन के दल-बादल
हा हन्त ! इन्हीं के लाये !!

कर के क्यों यात्रा इतनी
महमूद - मोहम्मद आते,
सम्पत्ति न यह अरबों की
एकत्र यहाँ यदि पाते ?

यह सोमनाथ, यह मथुरा
यह कुरुक्षेत्र, यह काशी,
मठ - मन्दिर की महिमा से
लाये यह सत्यानाशी !

द्विज देव यहाँ दम्भों की
अहिफेन खिलाया करते,
बहु देव - दासियों द्वारा
उत्तेजन पाया करते !

यह व्यभिचारों के अड्डे
यह मुस्तंडों की मंडी,
सुख - सुविधायें मनमानी
पा रहे यहाँ पाखण्डी !

हाँ, आज इन्हीं के बल से
रक्षित है सत्ता सारी,
इन से निर्भयता पाकर
पलती पूँजी हत्यारी !!

× × ×

हम क्यों अछूत कहलाते ?

मल - मूत उठाकर कितना
कितनों की छूत छुड़ाते,
करके नित सेवा भारी
हम क्यों अछूत कहलाते ?

'सेवा का धर्म गहन है'
हमने इसको अपनाया,
क्या जाने फिर भी हमको
क्यों अशुभ - अछूत बताया ?

'सेवा से मेवा मिलती'
सुनते यह सूक्ति निराली,
हम सेवा कर कर सब की
खाते नित घूँसे - गाली !

चोरी न किसी की करते
बैठे न किसी दिन खाते,
अपराध किया क्या हमने
क्यों हम को घृणित बताते ?

अमकार बुरा वह भंगी
जो जग की छूत छुड़ाता !
श्रम के बिन विप्र न खोटा
जो भिक्षा - वृत्ति बढ़ाता ?

। का मर्म समझ कर
गांधी ने यही पुकारा--
'करुणेश ! कृपा कर देना
भंगी - घर जन्म हमारा !'

'तुम 'पैरों' से पैदा हो
हम को 'मुख' से उपजाया,
बकवाद गढ़ी क्या थोथी
ले कर पोथी की छाया !

क्यों रेखा खड़ी उठा कर
यह नीच - ऊँच निर्माते ?
है एक डगर आने की
सब एक डगर से जाते।

यदि ईश्वर ने चरणों से
हम दीनों को उपजाया,
क्यों हम को पूज्य समझ कर
तुम सब ने सिर न झुकाया?

अधिकार हमारे हरते
कह कह कर यही कहानी,
इसमें न कहीं सच्चाई
यह पोल हमारी जानी।

बदकार हमें बतलाकर
यदि अत्याचार न करते,
गलहार गुलामी लेकर
क्यों बन्दी बने विचरते!

सदियों से हमें सताकर
यदि शक्ति न अपनी खोते,
क्यों कोटि-कोटि कहलाकर
यों पर-वशता में रोते!

× × ×

मरते जो आज अभी तक
नित मार सभी की खाकर,
उपकार हुआ क्या उनका
'हरिजन' की पदवी पाकर?

× × ×

अपने 'पवित्र' पेशों से
खा खा कर जब न अघाये,
वह उद्यम 'अधम' हमारे
तब तुम ने भी अपनाये!

जिन कामों के करने से
हम अशुभ - अछूत कहाते,
तुम आज उन्हें करके भी
क्यों नीच न समझे जाते?

उद्योग हमारे छीनो
शिक्षा से हमें हटाओ,
जब काम तुम्हारा अटके
'हरिजन' कह कर बहँकाओ!

× × ×

क्या और कहीं भी होगा
इतना अन्धेर अनोखा?
अपनों ने अपनों को ही
क्या दिया कहीं यों धोखा?

× × ×

यह जात - पाँत का बंधन !

यह ऊँच - नीच के झगड़े
हा ! किस ने व्यर्थ बढ़ाये ?
किस ने नित हमें लड़ाकर
कटुता के पाठ पढ़ाये ?

यह छूत - अछूत बनाकर
किस ने हम सब को फोड़ा ?
आपस के मेल - मिलन में
अटकाया किस ने रोड़ा ?

किस की करनी से टूटी
अपनी यह भाई - बन्दी ?
'हम बड़े और सब छोटे,
बकवाद गढ़ी यह गन्दी !

आपस में हमें लड़ाकर
देखें कब कौन सताता,
यह जात - पाँत का बन्धन
यदि आज यहाँ से जाता ।

× × ×

है कौन कहाँ से नीचा ?
है कौन कहाँ से ऊँचा ?
क्या एक समान नहीं है
हम सब का जिस्म समूचा ?

क्यों ब्राह्मण - भंगी दोनों
कुछ अपना चिह्न न लाते ?
एक ही डगर क्यों आते
एक ही डगर क्यों जाते ?

भंगी में भी ब्राह्मण है
ब्राह्मण में भी है भंगी,
चारों वर्णों के क्रम से
यह देह बनी बहुरंगी ।

जो काम करे कुछ ऊँचा
वह ऊँचा क्यों न कहाये ?
चाहे भङ्गी - घर जन्में
चाहे ब्राह्मण - घर जाये ?

तुम कहते वेद बताता
ब्राह्मण मुख से उपजाया,
हम कहते इस मंतक में
ब्राह्मण कर स्वार्थ समाया !

एक ही बदन वेदों ने
चारों का वास बताया,
चारों के संग्रह से ही
मानव विराट कहलाया।

चरणों से सेवा करना
मुख से विज्ञान बढ़ाना,
यह भाव भरा वेदों में
बाकी है व्यर्थ बहाना।

× × ×

'मानव से मानव नीचा'
यदि वेद यही बतलाते,
क्यों दीपशलाका लाकर
स्वाहा न उन्हें करवाते ?

मानव मानव सम समझो
या जल्द जगत से जाओ,
वैषम्य - व्यथा बगरा कर
द्विज देव ! न अब दहलाओ।

यह ठेका तो नकली है।

कितना ही कहें कहायें
द्विज देव न फिर भी माने,
थोथे पोथे पलटा कर
हठ अपनी हरदम ठाने।

जो पोथे तुम दिखलाते
कब किस ने इन्हें बनाया ?
क्यों दीख रही है इन में
आपाधापी की छाया ?

अपने को सब से ऊँचा
क्यों तुम ने आप बनाया ?
सुखमय समाज की जड़ में
क्यों विष - वैषम्य बहाया ?

यह पोथी - पंथ तुम्हारा
जब से समाज में आया,
यह देश रसातल पहुँचा
फिर लौट न ऊपर पाया !

अपने हाथों ही तुम ने
लिख लिया धर्म का ठेका !
अपने को उच्च बताया
औरों को नीचे फेंका !!

यह जाली ठेकेदारी
अब तक तो बहुत चली है,
हाँ, आज समझ में आया
यह ठेका तो नकली है !!

× × ×

बाला विधवा बेचारी !

क्यों धर्म - सनातन कहकर
दानवता को दहलाते ?
इस दूध - मुखी दुखिया को
क्यों विधवा व्यर्थ बताते ?

दुष्कर्म किया क्या इसने
क्या इसका पातक भारी ?
क्यों ढोती भार दुखों का
बाला विधवा बेचारी ?

किस पंगु प्रथा ने छीनी
इस की सुविधायें सारी ?
किस निष्ठुर ने कर डाली
इस के जीवन की ख़्वारी ?

किस ज्वाला में जल जल कर
यह कलिका यों मुरझायी !
किस के कुचक्र में पड़कर
इस ने यह विपद् बुलायी ?

किस की यह आस लगाये
किस का अब इसे सहारा ?
तिल - तिल कर जलता जाता
इस का यह यौवन प्यारा !

अपने अपने धंधों में
दुनिया नित दौड़ी जाती,
विधवा की दीन दशा पर
फटती न किसी की छाती !

व्यवहार जगत के जिसने
कुछ भी न अभी तक जाने,
क्यों विधवा उसे बताते
हे हे द्विजवर दीवाने !

वैधव्य - व्यथा का हामी
वह भ्रूणों का हत्यारा,
कब दूर यहाँ से होगा
यह पोंगा - पंथ तुम्हारा ?

फाँसी पर क्यों न चढ़ा दें
इन धर्मी हत्यारों को,
वैधव्य - व्यवस्था - बल जो
विकसाते व्यभिचारों को !!

—समसा

इन पोथों के पन्नों को
अब तो हम जल्द जला दें,
क्यों यह कानून कटीले
अबला के ऊपर लादें ?

कितनी न सती कह कह कर
जीते - जी चिता चढ़ायीं !
जीवन भर जलवाने को
अब 'विधवा' गयीं बतायीं !!

कितनी न मरें घुल घुल कर
अंधेर - भरे भवनों में !
कितनी न निराश्रित 'सीता'
आश्रय लेतीं यवनों में !!

कितनी न भयातुर भागें
भृत्यों की भार्या बनकर !
कितनी नित भ्रूण गिरातीं
अनजानें 'आर्या' बनकर !!

ले शाप ससुर का कितनी
सेवन करती हैं काशी !
कितनी वेश्याएँ बनतीं
कुल की कर सत्यानाशी !!

निर्मल नारीत्व नसाकर
विष - पूर्ण विकार बढ़ाकर,
कितनी 'महान' मरती हैं
नित 'नन्ही जान' कहाकर !!

द्विज - दैत्य ! देख तो तेरा
सड़ गया समाज समूचा,
निर्लज्ज ! लगाता तू क्यों
निज मूल्य अभी तक ऊँचा !!

तेरी ठाकुर बाड़ी में
भ्रूणों के गात गड़े हैं !
प्रभु के आसन के पीछे
शिशु के कंकाल सड़े हैं !!

जल रही सनातन शव - सी
विधवा की जरठ जवानी !
कह पाता काश करुणा ! तू
इस की यह अकथ कहानी !!

× × × ×

यह साधु, कि वैभव-भोगी ?

हरदम हराम का खाते
बन बन कर बिकट बियोगी,
कितना भू - भार बढ़ाते
यह साधु, कि वैभव - भोगी ?

बेकार फिरें सदियों से
यह लम्पटता की टोली,
क्या क्या न अनर्थ कराती
इन से यह जनता भोली !

सुख - हीनों को सुख देते
जो सह कर कष्ट - कसाला,
हो रहा उन्हीं के हाथों
मानवता का मुँह काला !

दस, बीस, पचास, न सौ हैं
यह अस्सी लाख अकेले !
होंगे करोड़ से कम क्या
इन के कुल चौपट चेले !!

कितनी न संगठित सेना
इन बेकारों से बनती,
यह दुश्मन को दहलाते
यदि कभी लड़ाई ठनती !

कितने न कारखानों को
इन की श्रम - शक्ति चलाती,
इन के असंख्य हाथों से
कितनी खेती लहराती !

कितने उजाड़ जन - पद भी
इन के बल से बस जाते,
रागी बन यही विरागी
कितनी जन - शक्ति बढ़ाते !

यह धर्म सनातन अपना
यदि राष्ट्र - हितैषी होता,
योरप के खूँखारों का
पल में मद - मत्सर खोता !

अरबों की द्रव्य दबा कर
कहलाते 'तपसी' - 'त्यागी',
सम्राटों के समतर हैं
यह 'भिक्षु' और 'बैरागी' !!

शासन है साथ इन्हीं के
धनियों का इन्हें सहारा,
हाँ, आड़ धर्म की ले कर
अन्धेर मचा यह सारा !

यह 'अपरिग्रह सन्यासी'
अब स्वर्ण - तुला पर तुलते !
बहु 'देव - दासियों' द्वारा
इन के पट 'पावन' खुलते !!

कंचन के छत्र - चँवर हैं
मणि - मुक्ता की अम्बारी,
निकली है आज नगर से
नागों की सदल सवारी !

सरकार इन्हें सन्माने
जनता इन से भय खाती,
यह जो चाहें कर डालें
कुछ आँच न इन पर आती !

अहिफेन - चरस - चंडू में
फुँक रहा माल मन - चाहा !
श्रमिकों की कठिन कमाई
हो रही चिलम से स्वाहा !!

यह देश दुखी - दुर्बल है
इन को न कभी कुछ गम है!
सावन के इन अंधों को
हर समय हरा मौसम है!!

क्या अंग विढंग बनाया
बदरंग विभूति लगाकर,
क्या इनसे सुअर न अच्छे
थल शुद्ध करें मल खाकर?

पर - वशते! तेरा क्षय हो
यह जौहर तू करवाती!
अन्याय - अनय यह लखकर
धर्मों को मौत न आती!!

कह चुके 'करुणा' कितना ही
अब क्यों काया कलपाते?
धिक्कार इन्हें देकर क्यों
अपने मुँह माहुर लाते?

× × ×

आदर्श हमारे भारी !

हम हैं धर्मध्वज - धारी
जग - जाहिर जाति हमारी,
अध्यात्म हमारा धन है
आदर्श हमारे भारी !

सभ्यता तथा संस्कृति में
बज रहा हमारा डंका,
पर - बंधन में बँध कर भी
हम को न किसी की शंका !

कितना ही अंधड़ आया
हम हुए न टस से मस हैं,
निज लीक न हम ने छोड़ी
यद्यपि इतने बेबस हैं !

× × × ×

हाँ, अब भी 'आठ कनौजी
नव चूल्हे' वाले किस्से,
ध्रुव धर्म - भाव से भर कर
हो रहे हमारे हिस्से !

हम बकरा एक बना कर
पूरे का पूरा खा लें !
छूते ही किन्तु रसोई
मुख में वह कौर न डालें !!

तुम कहते — यह कट्टरता
हम समझें धर्म सनातन,
तुम रूढ़ि इसे बतलाते
हम कहते प्रथा पुरातन !

हाँ धर्म, धर्म धन अपना
हम आड़ इसी की लेंगे,
सुखमय स्वराज्य के ऊपर
प्राधान्य इसे ही देंगे !

विद्वान विपुल विज्ञानी
हम से ही फतवे पाते,
कह दिया कभी जो हमने
वह 'ब्रह्म - वाक्य' बतलाते !

तुम विधवा - व्याह रचाते
तुम ने अछूत उद्धारा,
हम इसे अधर्म समझते
हाँ, इस में सुयश हमारा !

जो भाग रही हों, भागें
वेश्या बनती, बन जायें,
विधवा का व्याह रचा कर
हम अपनी नाक कटायें ?

दो - दो रुपयों में बेचें
ग़ज़नी - गोरी ले जा कर,
हम धर्म सनातन त्यागें
क्यों पुनर्विवाह रचा कर ?

कितने ही भ्रूण गिरायें
ईसा - मूसा - घर जायें,
यह व्याह न अपने बल का
घर रहें, बहें विधवायें !

वैधव्य बदा है जिन को
वह भोगें समझ भलाई,
क्यों धर्म बिगाड़ें अपना
कर उन की अन्य सगाई ?

हम नब्बे - बरसी बूढ़े
कन्या से करें सगाई,
यह ऋषियों की मर्यादा
क्यों भूलें इस को भाई !

जो पूर्व - जन्म के पापी
वह आज अछूत कहाते,
हम महा हितैषी उन के
उन से निज स्पर्श न लाते!

कोई हो राजा - रानी
क्या इस में हानि हमारी?
हम धर्म सुरक्षित चाहें
अभिलाषा यही हमारी!

'सागर के पार पठाओ
धन - धान्य भले ही सारा,
धक्का न धर्म को देना',
यह एक हमारा नारा!

'बहुवाद' बुरा बतला कर
तुम इस की हँसी उड़ाते,
हम इसी 'बहुल' के बल में
सत्ता का सम्बल पाते!

यह जात - पाँत के बंधन
यह धर्म - कर्म के धंधे,
इन के बल बैठे खाते
कर तुम्हें अकल के अंधे।

यज्ञोपवीत यह प्यारा
चौड़ी यह चुटिया अपनी,
जो चाहे राज्य सँभाले
लटकी यह लुटिया अपनी!

पर्दे की प्रथा हटा कर
नारी-स्वातंत्र्य सुझा कर,
तुम शासन हरो हमारा
पत्नी पंडिता बना कर!

यह राजा-रंक मिटा कर
तुम समता लाने कहते,
'दिल्लीश्वर जगदीश्वर हैं'
हम सुपद पुराने कहते!

पिछले सुपुण्य के फल से
जो आज यहाँ सुख पाते,
तुम उन्हें लुटेरे कह कर
ईश्वर से बैर बढ़ाते!

सीधे सरकार हमारे
दाता दरबार हमारे,
तुम श्रमिकों के गुण गाओ
शुभ साहूकार हमारे!

× × × × ×

यह विषधर काले - काले !

सामर्थ्य किसे है इतनी
जो इन से हमें बचा ले,
आस्तीनों में बसते हैं
यह विषधर काले - काले

डँसने से बाज़ न आते
यह अपने फन फैला कर,
भयभीत कभी कर देते
अपनी फुफकार दिखाकर !

जनता को काबू रखना
इन का यह पावन पेशा,
हठ - धर्मी उसे सिखाना
बस उद्यम यही हमेशा !

'खतरे में धर्म हमारा'
इनका यह नित का नारा,
अनमेल अमिट उपजाना,
यह एक पुरोगम प्यारा !

यह हिन्दू - महा - सभाई
यह मुस्लिम - लीगी भाई,
क्या क्या न अधर्म कराते
यह धर्मों के व्यवसाई!

यह ऊँचे बँगलों वाले
यह जग - मग जँगलों वाले,
किस क्रूर - कुटिल से कम हैं
यह गम - गम गमलों वाले!

बहु बुल्डागों के स्वामी
यह फल - फुलवाड़ी वाले,
किस के न फेफड़े फाड़ें
यह मोटर - गाड़ी वाले!

सौ - सौ सहस्र से कम की
यह कार न रखने वाले,
अपनी दौलतमंदी का
कुछ पार न रखने वाले!

सुखमय स्वराज्य के द्रोही
पर - वशता के अनुगामी,
प्रभुता के पालित पुंश
यह 'हाँ हुज़ूर' के हामी!

पर - वशता की पीड़ा का
अनुभव है इन्हें न कोई !
हाँ, धर्म - धर्म कहते ही
जागे यह जड़ता सोई !!

यह राय - बहादुर बनकर
रखते यह राय अनोखी—
शासन से वैर न बाँधो
शिक्षा यह चंगी - चोखी !

× × ×

यह सरकारी 'सर' इन का
इन को नित यही सिखाता—
सरकार कहें सो सच है
अपना क्या आता - जाता ?

यह सरकारी 'सर' पाकर
अपना सर ऊँचा समझें,
साहबी - बूट - बंदन में
सुख - सार समूचा समझें !

वह सर जाये तो जाये
वह 'सर' न कहीं कट जाये,
कितनी कुरबानी करके
हम सरकारी सर पाये !

वह जनता के खातिर है
यह साहब को अर्पण है,
यह सच्चा 'सर' सरकारी
दोहरे दल का दर्पण है !

× × ×

सत्ता को साधे रहना
बंधन को बाँधे रहना,
कुल काम यही है 'सर' का
धर्मों में धाँधे रहना !

गौरांग महा प्रभुओं की
अनुकम्पा पाकर प्यारी,
सर्वस्व निछावर करना
शोभा है 'सर' की सारी !

जनता के बीच बड़े हैं
सरकार इन्हें सन्माने,
दोनों के गँठ - बन्धन को
क्या तार अनोखे ताने !

कुछ हिन्दू - सभा सँभालें
कुछ मुस्लिम - लीग लगा लें,
जनता की गुमराही में
मज़हब के डोरे डालें !

बाजे की बात बढ़ा दें
पीपल के लिये लड़ा दे,
सुखदायी ईद हटाकर
मनहूस मोहर्रम ला दें !

गोरे गुरगों के हाथों
हरदम यह खेला करते,
सुखमय स्वराज्य पाने की
कितनी अवहेला करते !

× × ×

घर की यह घृणित गुलामी !

कालों की खुशल कराती
गोरों को समझे स्वामी,
किस गौरव से कमतर है
घर की यह घृणित गुलामी !

देशी नरेश कह कह कर
क्यों इनका गर्व घटायें ?
गोरे गुमाश्ता बनियों की
बीवी न इन्हें बतलायें ?
श्रमिकों के कंकालों पर
यह ऊँचे महल उठाते !
कृषकों का शोणित पीकर
यह चम - चम चमक दिखाते !!

उत्पीड़न पर पनपा है
यह राजतंत्र दुखदायी,
सदियों से हड़प हड़प कर
कितनों की कष्ट - कमाई !

पाकर यह हाल सुढंगी
पनपे हैं यहाँ फिरंगी !
भारत का भार बढ़ाती
इन की यह ताकत जंगी !!

सागर के पार पठाया
सारा सुख - साज इन्हीं ने !
पर - बंधन में बँधवाया
अपनों को आज इन्हीं ने !!

पर - वशता के पोषक हैं
लादें गलहार गुलामी !
गैरों के संग सगाई
अपनों से नमकहरामी !!

× × ×

नौकर - शाही के हाथों
हरदम यह खेला करते,
छुटकारे के छकड़े को
यह पीछे ठेला करते !

नित नव शृंगार सजाकर
करते यह सैर - सपाटा,
हाँ, द्रव्य - दारु - दारा का
इनको न कहीं कुछ घाटा !!

दुखिया श्रमकार - कृषक से
ले ले कर पाई पाई,
पेरिस के पुण्य पथों की
करते नित सैर सुहाई !

यह आज पड़े पेरिस में
कल लंदन दौड़ लगाते,
शिमला के शैल - शिखर पर
परसों यह उड़ कर आते !

लाखों की द्रव्य लगाकर
बनते यह शूर - शिकारी,
ऊँचे मचान से मारें
बन - बैल भले ही भारी !

कितनों के प्राण न लेते
इन के यह जंगल जारी,
हिंसक पशुओं का पालन
है हुक्म जहाँ सरकारी !

× × ×

भूखों किसान मर जायें
श्रमिकों को मिले न दाना,
हो किन्तु व्यसन यह पूरा–
कुत्तों की सैन्य सजाना !

क्या पाप किया कुछ भारी
यदि पाली प्रजा न काली,
गोरे बुल्डाग बढ़ा कर
कितनी कुल - कीर्ति कमा ली !

× × × ×

पोलो के लिये पली है
घोड़ों की संख्या भारी,
मोटर में मौज कहीं है
घुड़दौड़ कहीं है जारी !

महलों के बीच बसी हैं
सुन्दरियों की सेनायें,
है काम जिन्हें यह भारी–
नित नाचें - खेलें - खायें !

प्रासादों के प्राङ्गण में
मनमानी मधुशालायें,
महाराज यहाँ मधु ढालें
महरानी मौज मनायें !

क्या कल कालीन बिछे हैं
जग - मग हैं महल अटारी,
इन्द्रासन से करतार है
क्या इनका वैभव भारी ?

मनमानी मौज मनाना
यह एक पुरोगम इन का !
बस द्रव्य - दारु - दारा में
रत रहता उद्यम इनका !!

× × ×

किस कारागृह से कम हैं
अन्तःपुर के तहखाने ?
निर्दोष रमणियाँ जिन में
सन्ताप सहें अनजाने !

बस एक बार छू छू कर
छोड़ी कितनी कलिकायें,
रनिवासों के रौरव में
रो रो कर वयस बितायें ।

अन्तःपुर के कण - कण में

भ्रूणों का रुधिर भरा है !

रनिवासों के रौरव में

बर्बर विकार बिखरा है !!

कुल पाप - दोष दुनिया का

यदि एक जगह जुड़ जाये,

आधे में विश्व समूचा

आधा महलों से आये !!

कोई न कह सके—क्यों जी !

यह अनाचार क्यों करते ?

क्यों एक तुम्हारे खातिर

यह इतने मानव मरते ?

यह घर की घृणित गुलामी ?

या राजतंत्र भारत का ?

अथवा हम इसे बतायें

अष्टम आश्चर्य जगत का ?

× × × ×

यह अप्रिय सत्य - कहानी !

डंके की चोट कहेंगे
यह अप्रिय सत्य - कहानी,
अब क्योंकर छिपे छिपाये
जो बात हमारी जानी ?

सत्तावन के बलवे में
जब भागे फिरे फिरंगी,
तन - प्राण बचाने की भी
पड़ गयी उन्हें जब तंगी....

विद्रोही सेनाओं ने
जब नाक - चने चबवाये,
दिल्ली - बिठूर - कम्पू के
हर गढ़ से गये भगाये—

विद्रोह बढ़ा यौवन का
पड़ गये प्राण के लाले,
जब बढ़े बढ़ाया देकर
देशी सैनिक मतवाले—

नाना - से नर - नाहर ने
बलवे की बाग सँभाली,
वीरों का वेष बनाकर
झपटी वह झाँसी वाली—

नव्वाब - मरहटे - क्षत्रिय
बुन्देले और बघेले,
आपस का भेद भुलाकर
आ मिले सभी अलबेले—

गिर गया विदेशी झंडा
बलवे की एक लहर से,
ले ले कर लाल पताका
नवयुवक चले घर - बर से—

खलबली बढ़ी भारत में
वह चली रुधिर की धारा,
माता के मतवालों ने
पर - वशता को ललकारा—

'मत बचे विदेशी बनियाँ
अब कोई भी बिन मारे,'
जन - जन का जोश जगाया
यह लगा लगा कर नारे—

चल सका न चारा कोई
दहशत में पड़े फिरंगी,
अब काम न कुछ भी आयी
उन की वह ताकत जंगी—

× × ×

क्या करें ? किधर से भागें ?
अब क्योंकर प्राण बचायें ?
आने का नाम न लेंगे
यदि जीते - जी घर जायें !

अब चाह नहीं शासन की
रह लेंगे बनकर बनियाँ,
यदि भाग सके भारत से
बेचेंगे हल्दी - धनियाँ !

उस ओर मनों में उन के
यह डावाँडोल मची थी,
हा हन्त ! इधर विधना ने
भावी कुछ और रची थी !

कुछ और अभी भरना था
यह घड़ा पाप का भारी,
कुछ और अभी बढ़नी थी
यह पर - वशता हत्यारी !

कस कर कुछ और शिकंजे
चुसना था रक्त हमारा,
बह बह विदेश जाना था
भारत का वैभव सारा !

यह ज़ुल्म ज़मींदारी का
होना था हम पर भारी,
यह घर की घृणित गुलामी
सिर पड़नी थी हत्यारी !

जिस फोड़ - फाँस के बल पर
पनपे थे यहाँ फिरंगी,
वह फोड़क - नीति निराली
चमकी फिर चोखी - चंगी !

'जयचन्दों' को ललचाया
दे दे कर चंद नेवाले,
गोरों का विभव बढ़ाने
झट बढ़े विभीषण काले !

दहशत में दबे फिरंगी
जो भाग रहे थे भय से,
निर्भय हो वापस आये
इन जयचन्दों की जय से !

वह पूर्ण पराजय उन की
हा हन्त ! विजय में बदली !
स्वातंत्र्य - सुधा के सिर पर
यह घृणित गुलामी लद ली !!

वह प्रखर खालसा - सेना
बृटिशों की रक्षक बनकर,
खा गयी विभव भारत का
घर - भेदी भक्षक बनकर !!

अपनों ने अपनों पर ही
वह अत्याचार मचाये !
अपना सुदेश दलने को
अपनों ने अस्त्र उठाये !!

ऐसी घर - घातकता की
दुनिया में मिलें मिसालें,
हा ! किन्तु न चलती देखीं
इतने कुचक्र की चालें !!

ज़ालिम की ज़ंजीरों को
कल जिस ने काट गिराया,
उस दुर्भागिन दिल्ली पर
आतङ्क वही फिर छाया !

वह फटा फिरंगी झंडा
फिर गया वहाँ फहराया !
फिर उसे सलामी देने
जयचन्दों का दल आया !!

वह सुन्दर - सुखद - सुहावन
वह पावन से भी पावन,
जा पड़ा पराजय - पथ में
वह विजयी सन् सत्तावन !

वह अंधकार की आभा
स्वातंत्र्य - सुधा की झाँकी,
पलटे में जिसके पायी
मुस्कान मृत्यु की बाँकी !

वह तरुण - हृदय की होली
यौवन की छलक छबीली,
क्षण भर की छटा दिखाकर
छिप गयी स्वगुण - गर्बीली !

संहार महा ताण्डव की
वह यौवन का उत्तेजन,
हा ! सुप्त हुआ सदियों को
वह रण - चण्डी का चेतन !

× × ×

प्रति - हिंसा का प्लावन - सा
गोरों के हाथों हो कर,
लाखों के गर्म रुधिर से
धर गया धरा को धो कर !!

ग्रामों में आग लगा कर
खेतों में अश्व चरा कर,
संहार किया मानव का
उलटा - सीधा लटका कर !!

इतिहास कभी जब अपना
खुल कर आगे आयेगा,
इस महा मनुज - हिंसा की
कुछ गाथायें गायेगा !

'सभ्यता' और 'संस्कृति' में
जो बढ़े चढ़े 'विज्ञानी',
उन की बखिया खोलेगी
यह अप्रिय सत्य - कहानी !

× × ×

हिमगिरि - सी भारी भूलें !

हम नीति - निपुण कहलाकर
कितने ही मन में फूलें,
कर रहे न जाने कब के
हिम - गिरि - सी भारी भूलें !

× × ×

जब वह वेदान्त बढ़ाया
वसुधा को व्यर्थ बताया,
जब कहा —'जगत मिथ्या है
कर्त्ता की मंजुल माया'—

'झूठे हैं जग के धंधे
क्यों इन से स्नेह लगाता ?
आयेंगे साथ न तेरे
यह बन्धु - पिता - सुत - माता' ।

जब जन - जन के जीवन में
कर्तव्य - विमुखता आयी,
यह विश्व बना बेगाना
पर - लोक लगा सुखदायी--

जब देश और दुनिया की
कुछ रही न ज़िम्मेदारी,
बन बैठे विकट विरागी
यह भारी भूल हमारी !

× × × ×

जब अशुभ - अछूत बता कर
यह विष - वैषम्य बढ़ाया,
जातीय निरादर करके
अपनों को ग़ैर बनाया !

थे जो समाज के सेवक
थी जिन पर नींव हमारी,
जिन के पेशों से पल कर
जीती थी जनता सारी—

हा ! उन को नीच बना कर
अपनी बुनियाद बिगाड़ी,
गिर जाती क्यों न गढ़े में,
वह गुण - गौरव की गाड़ी ?

जो सब की छूत छुड़ाते
करते नित सेवा सारी,
हम उन्हें अछूत बताते
यह भारी भूल हमारी।

× × × ×

माता की पदवी पा कर
जो पालन सब का करती,
मानव का मोद बढ़ा कर
कोमल भावों को भरती--

वह महा शक्ति की सीमा
ममता की प्रतिमा प्यारी,
वह वर विकास की जननी
मानवता की महतारी--

हा हन्त ! उसे दुख देते
सदियों से हम हत्यारे !
क्या सब कुल्हाड़े हमने
अपने मस्तक में मारे !!

अधिकार सभी जो देती
छीना अधिकार उसी का,
पालन जो सब का करती
करते संहार उसी का !!

पर्दे में उसे फँसाकर
उसका सम्मान घटाया !
मानवता को कलपाकर
मानव ने क्या फल पाया ?

शूद्रों की भाँति उसे भी
निचली श्रेणी में पटका !
क्या इसी लिये संकट में
बेड़ा न हमारा अटका ?

जिन दो पहियों के द्वारा
चलती समाज की गाड़ी,
वैषम्य बढ़ा कर उन में
हम ने निज बात बिगाड़ी !

वह मातृ - शक्ति हितकारी
मानवता की महतारी,
अबला उस को कर बैठे
यह भारी भूल हमारी !

× × × ×

द्विज देवों की दूकानें
मठ - मन्दिर और शिवाले,
सदियों से मौज मनाते
जिन में वह डेरे डाले-

वह पत्थर का परमेश्वर
जिन में नित सोया करता,
जो 'अटका' उसे चढ़ाते
उन का दुख धोया करता !

अरबों की द्रव्य दबा कर
वह बैठे द्विज दीवाने !
बहु देव - दासियाँ देतीं
सुख - भोग जिन्हें मनमाने !

लख कर यह वैभव भारी
किस का न हृदय ललचाये ?
इनका आकर्षण पाकर
महमूद - मोहम्मद आये !

आरम्भ हुआ यों उन का
भारत में आना - जाना,
ऊँटों पर लद लद जाता
मन्दिर का माल - ख़ज़ाना !

यह सोमनाथ, यह मथुरा
यह कुरुक्षेत्र, यह काशी,
मठ - मन्दिर की महिमा से
लाये यह सत्यानाशी !

मठ - मंदिर यहाँ न होते
क्यों होती इतनी ख्वारी,
क्यों इन में द्रव्य दबायी
यह भारी भूल हमारी !

× × × ×

जब यवन यहाँ पर आये
यम - नियम निराले लाये,
अपनी पुराण - प्रियता से
हम देख जिन्हें दहलाये ।

वह मंत्र मनोहर उन का
'ला - इलाह - इल् - लल्लाहा,'
जड़ता से या कि जलन से
हम ने न समझना चाहा !

हम 'एक ब्रह्म' के वादी
फिर भी उन से घबराये,
वह हम से भिन्न नहीं हैं
इतना न समझने पाये !

रोटी - बेटी की रस्में
करने की कौन चलायें,
चट बहिष्कार कर उन का
वह अशुभ - अछूत बताये !

× × × ×

जातीय निरादर कर के
उन से विद्वेष बढ़ाया,
बेधर्म हुए हम ज्यों ही
उन से छू कर कुछ खाया !

—तमसा

यह घोर घृणा की घातें
वह कब तक सहते जाते ?
अस्पृश्य - अपावन प्राणी
क्यों अब तक रहते रहते ?

सम्राट सुधी अकबर ने
इस उलझन को सुलझाया,
दोनों के मेल - मिलन को
निज मंगल - मार्ग बनाया ।

दादू - कबीर - नानक ने
अपनी प्रतिभा प्रकटायी,
ओछापन परे हटाकर
सब की समता सिखलायी ।

औरँग की ज़ालिम ज़िद ने
हा ! किन्तु ग़ज़ब वह ढाया,
मिलने की कौन चलाये
आपस में और लड़ाया !

अकबर ने जिसे उगाया
शाहेजहान - जल पाया,
वह मेल - मिलापी पौदा
औरँग ने काट गिराया !

हा हा ! हम बिछुड़े तब के
अब तक न मिलन कर पाते !
नित नयी लड़ाई लड़ कर
सत्ता का विभव बढ़ाते !!

सुखमय स्वराज्य के मग में
नित नये अड़ंगे आते !
इस मातृ - भूमि के बदले
वह गीत अरब के गाते !!

× × ×

हम उन्हें न अपना पाते
वह बात करें बेगानी,
हम 'बहुमत' का दम भरते
वह बनते 'पाकिस्तानी' !

हम उन से घृणा न करते
वह क्यों करते बदकारी,
हम उन को म्लेच्छ बताते
यह भारी भूल हमारी !

× × ×

दोनों में कौन बड़ा है ?

विपदा में एक पड़ा है

बाधा बन एक अड़ा है,

आओ अब यह निपटा लें—

दोनों में कौन बड़ा है ?

× × ×

वह, जो श्रमकार कहाता

श्रम - साहस को अपनाता,

अथवा वह, जो श्रमिकों की

नित बैठ कमाई खाता ?

वह, जो किसान कहलाता

धन - धान्य अमित उपजाता,

अथवा, जो दर्प दिखा कर

उस की वह उपज उड़ाता ?

वह, जो मल - मूत उठाता
लाखों की छूत छुड़ाता,
अपने मुँह मिट्ठू बन कर
अथवा जो घंट हिलाता ?

वह, जो छल - छिद्र छुड़ाता
दुखियों का दर्द सुनाता,
अथवा, छाया - माया में
जो अपना 'रहस' रचाता ?

वह, जो विज्ञान बढ़ाता
उन्नति का पाठ पढ़ाता,
बातों के विपुल बतासे
अथवा जो नित्य खिलाता ?

वह, जो भ्रम - भाव भगाता
नव जीवन - ज्योति जगाता,
मन्दिर - मस्जिद - गुरुद्वारे
अथवा, जो बहुत बनाता ?

वह, जो जन - जन के जी में
शुभ साम्य - सुधा सरसाता,
अथवा, थोथे पोथों की
जो ब्रह्म - बड़ाई गाता ?

वह, जो निज रक्त सुखा कर
करता नित काम कड़ा है,
अथवा, औरों के श्रम से
जिस का यह महल खड़ा है?

वह, जो विप्लव फैला कर
जन - जन में क्रान्ति मचाता,
मध्यम 'सुधार' की धारा
अथवा जो बहुत बहाता ?

× × ×

इन प्रश्नों में पच - पच कर
सोया मैं जाकर ज्यों ही,
दो दृश्य दिये दिखलाई
निद्रा में आकर त्यों ही-

उस दिव्य देश में पहुँचा
पंडित था जहाँ न कोई,
मनमानी महिमाओं से
मंडित था जहाँ न कोई-

कोई न पादरी - मुल्ला
मुंशी - मुख़्तार वहाँ था,
कोई न वकील - विरागी
या साहूकार वहाँ था—

जमघट्ट ज़मींदारों का
देता न वहाँ दिखलाई,
राजा - रईस की सत्ता
मैं ने न वहाँ पर पायी—

पंडे - पुजारियों से भी
वह दिव्य देश था खाली,
फिर भी फैली फिरती थी
उसमें इतनी खुशहाली !

उस के उन सभ्य जनों से
पूछा मैं ने —हे भाई !
वह और मनुज इस जग में
क्यों देते नहीं दिखाई ?

हँसकर कह उठे —'करुणा' जी !
भूकम्प हुआ था भारी,
बस उस के गर्भ समायी
उन की वह सेना सारी।

× × ×

इस उत्तर से चकराया
मैं अन्य लोक में आया,
पहले प्रदेश से उस को
पर इकदम उलटा पाया!

जो वहाँ नहीं थे वह तो
सब के सब इस में पाये,
पर एक बड़ी विपदा से
सब फिरते थे मुँह बाये—

भिश्ती - चमार - चपरासी
नाई था वहाँ न कोई,
वह छूत छुड़ाने वाला
भाई था वहाँ न कोई!

दर्ज़ी - धुनकार - जुलाहा
दिखलाता वहाँ न कोई,
मक्खन - अख़बार अँधेरे
लाता अब वहाँ न कोई!

कोई न किसान वहाँ था
अब खेती करने वाला,
कोई न मजूर वहाँ था
श्रम - संकट हरने वाला!

बेकार खड़ी थीं रेलें

बेज़ार पड़ी थीं जेलें,

सड़कों पर सन्नाटा था—

क्योंकर यह गेंद सकेलें ?

धनवान वहाँ सिर धुनते

राजा - रईस थर्राते,

बाबू - वकील - बैरिस्टर

फिरते थे सिर खुजलाते !

उस दुर्भागी दुनिया में

सुख - साधन लेश नहीं था,

था कौन वहाँ पर प्राणी

जिस को कुछ क्लेश नहीं था !

उन का वह देश अभागा

किस रौरव से कमतर था ?

दुख दारुण कौन कहाँ का

उस पीड़ा के समतर था ?

× × × ×

मन्दिर के पास पहुँच कर

मैं ने आवाज़ लगायी—

महराज ! तुम्हारे घर पर

यह आफ़त कैसी आयी ?

पछता कर पंडित बोला—

मत पूछो करुणा ! कहानी,

पिछले शनि के दिन आयी

यह विपद् बड़ी बेजानी !

जितने श्रमकार यहाँ थे

सब के सब लुप्त हुए हैं,

क्या जाने किधर गये हैं,

किस गढ़ में गुप्त हुए हैं !

आ रही हँसी ओठों पर

मैं ने झट उसे दबाया,

इतने में किसी मनुज ने

यह कह कर मुझे जगाया—

'लो प्रूफ़ 'करुणा' जी ! अपने

मैं लाया अभी उठाकर,'

बस, निद्रा के खुलते ही

उठ बैठा सक-पक पाकर ।

मन ही मन वन्दे कह कर

कर्मी कम्पोज़ीटर से,

'तुम बड़े और सब छोटे'

बोला उस नामी नर से ।

× × × ×

तुम गोर, गुणी, हम काले !

तुम व्यापक वैभव वाले
हम पर - वशता के पाले !
क्या तुम से साम्य हमारा
तुम गोर, गुणी, हम काले !

नित यंत्र नये निर्मा कर
तुम आगे बढ़ते जाते,
हम पोथों के पन्नों को
निज ज्ञानागार बताते !

तुम वर विज्ञान बढ़ा कर
उन्नति करते मन मानी,
हम धर्म - धर्म चिल्लाते
बन कर मिथ्या - अभिमानी !

तुम शब्द - अमरता सुन कर
मुट्ठी में विश्व बसाते,
हम तर्क तमंचे ले कर
कोरी बकवाद बढ़ाते !

नित नूतन कला - कुशलता
क्षमता में तुम मन देते,
हम रूढ़ि - उपासन में ही
अब तक अँगड़ाई लेते !

तुम यान अनोखे ले कर
अम्बर में दौड़ लगाते,
बाबा आदम के छकड़े
हम किन्तु अभी घसिलाते !

मुच्छों पर ताव जमा कर
तुम फिरते यहाँ अकड़ते !
हम घर में भी बेघर हैं
तुम सब के पैरों पड़ते !!

× × ×

तुम बुद्धिवाद के हामी
हम जड़ता के अनुगामी !
तुम सुखी - स्वतन्त्र विचरते
हम लादे फिरें गुलामी !!

तुम परिवर्तन के प्रेमी
करते विकास नित न्यारे,
'बाबा के वाक्य' अभी तक
हो रहे 'प्रमाण' हमारे !

तुम गोले - गैस गिरा कर
लाखों को मार मिटाते,
हम सत्य - अहिंसा लेकर
तपसी - त्यागी कहलाते !

नित नूतन वस्तु बना कर
तुम अपना बंज बढ़ाते,
हम लेकर 'लीक' पुरानी
नित उसे पीटते जाते !

तुम आसमान में उड़ते
तुम सागर - गर्भ समाते,
हम कायर - क्रूर कुयें के
मेंढ़क बने मुँह बाते !

तुम चन्द्र और तारों तक
जाने का दर्प दिखाते,
हम रात अँधेरी लख कर
घर - भीतर भी भय खाते !

—तमसा

तुम मुट्ठी भर हो कर भी
हम को नित नाच नचाते !
हम चालिस कोटि कहा कर
तुम सब की ठोकर खाते !!

व्यापक साम्राज्य तुम्हारा
सूर्यास्त न जिसमें होता,
हम अपना देश गँवाकर
खा रहे गुलामी - गोता !!

तुम राज - काज के मग में
चिन्ता न धर्म की करते,
गलहार गुलामी लेकर
हम 'धर्मी' बने विचरते !!

× × × ×

बड़भागी श्वान तुम्हारे
नित बिस्कुट - दूध उड़ाते,
हतभागी बाल हमारे
रोटी बिन मर मर जाते !!

भाषा का, आज तुम्हारी
प्राधान्य जगत में जारी,
निज घर में भी बेगानी
यह भाषा हाय ! हमारी !!

नर नीच न तुम में कोई
कोई न 'अछूत' कहाते,
हम ऊँच - नीच निर्माकर
आपस में बैर बढ़ाते !

तुम सामाजिक समता से
एका का अमृत खाते,
हम विष - वैषम्य बढ़ा कर
नित फूट नयी फैलाते !

तुम चूस रहे, हम चुसते
तुम पीट रहे, हम पिटते !
तुम आगे बढ़ते जाते
हम पीछे पड़ घसिटते !!

× × × ×

तुम शोषण करो, सताओ
हम दास बने, दुख पायें !
तुम गोर गुणी कहलाओ
हम काले कुली कहायें !!

× × × ×

तुम को श्रृंगार मुबारक !

तुम को श्रृंगार मुबारक
हम को संहार मुबारक !
तुम गीत विजय के गाओ
हम को यह हार मुबारक !!

तुम फूलों की बाड़ी में
हम काँटों की झाड़ी में !
तुम कलियों में मुसकाओ
हम को यह खार मुबारक !!

तुम को गुलगुले गलीचे
हम को खुरदरी चटाई !
तुम प्यार सभी से पाओ
हम को यह मार मुबारक !

प्रासादों के प्राङ्गण में
तुम अपनी सेज सजाओ,
हम को इस करुणा कुटी का
सूना संसार मुबारक !

दुख - दैन्य किसे कहते हैं
यह भी न कभी तुम जानो,
नित नये - नये दुखड़ों का
हम को दीदार मुबारक !

तुम ब्राह्मण की बैठक में
बढ़ बढ़ बेदान्त बघारो,
हम को श्रमकार - सभा में
समता का सार मुबारक !

भर भर कर स्वर्ण - सुराही
तुम मनमानी नित ढालो,
हम को पंकिल पानी का
यह टूटा जार मुबारक !

तुम मुक्त पवन में पल कर
झूलो नित, स्वर्ण - हिंडोले,
हम को अपने 'प्रभुओं' का
यह अत्याचार मुबारक !

नित नये नये अम्बर से
तुम अपना सौख्य सजाओ,
हम को इन कंकालों पर
खद्दर का भार मुबारक !

तुम सुर-बाला के सुर में
मन-मन्दिर मदिर बनाओ,
हम को बिगड़ी वीणा के
यह टूटे तार मुबारक !
तुम चन्द्र और तारों तक
जाने की करो तयारी,
हम को उलझी नैया का
पतला पतवार मुबारक !
तुम श्वानों को दुलरा कर
सोने के कौर खिलाओ,
हम को रूखी रोटी के
टुकड़े दो-चार मुबारक !

× × ×

तुम गोले-गैस गिरा कर
लाखों को मार मिटाओ !
बाबा आदम के दिन के
हम को हथियार मुबारक !!
छाया-माया के मग में
तुम अपना 'रहस' रचाओ,
हम को श्रमकार-कृषक का
यह हाहाकार मुबारक !

× × × ×

पीपल का पात पुराना—

जाने क्या गुन-गुन करता
बोला या गाता गाना,
फिरता था फुलवाड़ी में
पीपल का पात पुराना।

लगता था जिस के पीछे
पहले लाखों का मेला,
अब एक न साथी-संगी
संकट में आज अकेला!

पत्ते से अब यों पूछा—
यह क्या दुर्दशा तुम्हारी?
किस ने यों तुम्हें गिरा कर
अपमान किया अति भारी?

पछता कर पत्ता बोला—
मत पूछो बात पुरानी,
किस तरह तमाचे खा कर
मैं गिरा यहाँ अभिमानी !

हरदम ऊपर रहना है,
भ्रम था मुझ को यह भारी,
मेरा आतंक अटल है,
समझा मैं सत्ता - धारी !

शासन - सत्ता के मद में
मैं ने यह कुफल कमाया,
किस ओर हवा का रुख है,
यह भी न कभी लख पाया !

कहता था पुरवैया से—
तुम पंखा झलती जाओ,
घनघोर घटा से कहता—
तुम रिम - झिम जल बरसाओ !

आकाश ! छत्र तुम तानो
रवि - चन्द्र ! प्रभा फैलाओ,
आंधड़ ! क्यों ऊँघ रहे हो ?
नित झाड़ू यहाँ लगाओ !

पत्ता हूँ एक तनिक - सा
रखता हूँ सत्ता सारी,
नित मेरा गौरव गाओ
है इस में कुशल तुम्हारी !

सच है, अभिमान किसी का
क्या हरदम रहने पाता ?
जो आज उठा ऊपर है
कल भू पर पड़ा दिखाता !

अवसान कहूँ मैं अपना
या फेर समय का भाई !
पल - पल में पलटे खा कर
हो जाता पर्वत राई !

सुन लो हे सत्तावालों !
पत्ते की करुण कहानी,
शोषक - सत्ता - धीशों की
रह जाती यही निशानी !

× × ×

यह हाहाकार 'करुणा' का—

अनुभव है जिन्हें न कोई
दुखियों के दुख दारुण का,
सम्भव है समझ न पायें
यह हाहाकार 'करुणा' का !

× × ×

कितने ही 'नर्म' यहाँ हैं
कितने ही 'गर्म' यहाँ हैं,
शुभ साम्य - सुधा सरसा दें
कितने कल - कर्म यहाँ हैं ?

शुभ सार सुना धर्मों का
दुखियों के कष्ट हटाना,
फिर भी न तुम्हें क्यों भाता
समवादी विश्व बसाना ?

कृषकों की दशा सुधारें
श्रमिकों में सुख संचारें,
हाँ, आज वही ध्रुव - धर्मी
समता का बल विस्तारें।

विकराल क्षुधा के झकड़
तुम ने कब देखे - भाले ?
भूखे ही समझ सकेंगे
भूखों के कष्ट - कसाले !

दिन भर खाई खुदवा कर
कुछ पैसों से टरकाया !
हे न्यायाधीश ! बता तो
तू ने क्या आज कमाया ?

दुख दारुण भूरि भरे - से
धौले तन धूरि - धरे से,
हाँ, कृषक यही कहलाते
जी कर भी महा मरे से !

कर के उपवास अनेकों
पाते हैं कुछ पारायण,
क्यों इन को कृषक बताते ?
यह तो दरिद्र - नारायण !

दुर्बल - निरीह नर - नारी
अम्बार दुखों का भारी !
दुखियों के दर-दर देखी
दारिद की सतत सवारी !

दूसरा - तीसरा - चौथा
पाँचवाँ उपास कभी है !
दो आने की छिल पाती
हम से कुल घास कभी है !!

यह व्याज - लगान हृदय में
रह रह कर टीसा करते !
दो पाट प्रबल पीड़ा के
हम को निस पीसा करते !!

क्या दैव ! बिगड़ता तेरा
तू कितनों का जन्म लेता,
यह पापी पेट हटा कर
यदि पीठ यहाँ कर देता !

यह धुआँ नहीं, निश्वासें
कंकाल नहीं, काया है !
जठरानल की ज्वाला का
जंजाल यहाँ छाया है !!

वह आग कहाँ यह भाई !
जो इंजन से बुझ जाये,
रोटी की झड़ी लगाओ
दम - कल क्यों लेकर आये ?

बो बो कर बीज गँवाये !
दस - बारह बरस बिताये,
कुछ और 'इज़ाफ़ा' करने
साहब के सम्मन आये !

यह देख अँगरखा अपना
जी जल जल कर रह जाता !
इस कंचन - सी काया का
बख्तर क्या यही बिधाता !

दुनिया गर दोष न देती
हम को न किसी का गम था,
इस धोती के धारण से
नंगा रहना क्या कम था ?

होल्डर 'हरीस' ले लेकर
निब लेकर 'फार' फबीले,
हम ढेलों में लिखते हैं
निज भाग्य भले भड़कीले !

प्रिय पुत्र ! न यों पछताओ
सीखो कुछ खेती - क्यारी,
कृषकों को कहाँ बदा है
विद्या का वैभव भारी ?

यों हमें अपढ़ बतलाते
क्यों कहते अज्ञ - अनारी ?
यह रूढ़ि मूढ़ - मनभाई
जुग जुग से जिन में जारी !

लिख लोढ़ा हुआ हमारा
पढ़ पत्थर हमने माना !
लिख लो जो जी में आये
यह लो अंगुष्ठ - निशाना !

कुछ गंडे गले लगाना
तावीज़ बड़े बनवाना,
उपचार यही रोगों का
भैरव की भेंट चढ़ाना !

किसकी पूजा ? जप कैसा ?
संध्या - नमाज़ कब कैसी ?
बस ब्याज - लगान लगन है
ईश्वर की ऐसी - तैसी ?

सम्पत्ति सभी खोकर भी
होता न हमें दुख भारी,
हा हन्त ! न यदि हो जाती
यह चाल - चलन की ख्वारी !!

खा ले हे खटमल ! खा ले
क्यों कोर - कसर दिखलाता ?
यह रक्त हमारे तन का
जीवन का जाल बढ़ाता !!

सुख-चैन, 'अमन - आभा' की
क्यों चरचा यहाँ चलाते,
घर - बसे जमाई जैसे
दुष्काल जहाँ दिखलाते !!

फल फूट फौजदारी का
फन फैलाता मनभाने !
भिड़ते भाई से भाई
दीवानी के दीवाने !!

यह बन्धु - विरोधी बेलें
पीड़न की नयी नकेलें,
दुख - द्वन्द्व बढ़ाकर दूना
देहातों में खुल खेलें !

'अ' आओ 'दा' दे जाओ
'ल' लड़ लड़ कर मर जाओ,
कह रही 'अदालत' कब से
'त' तसला बहुरि बजाओ ।

—तमस।

कर दौड़ मरा मनमानी
पीकर सत्तू का पानी,
धन - माल मनौती लेकर
दे गयी दगा 'दीवानी' !

मुख्तार - मुहर्रिर - मुंशी
चपकन वाले चपरासी,
चूँसें सब रक्त हमारा
कुछ भी न बचाकर बासी !

दिन - रात कड़ा श्रम करते
बिन भूख बुझाये भारी !
क्यों भेंट न होंगे 'क्षय' की
हम कोटि - कोटि नर-नारी ?

मरने का किस को ग़म है
क्या काम यहाँ करने का ?
बस एक बिडम्बन भारी
यों तिल - तिल कर मरने का !

दुष्काल कठिन यह आया
अब कहाँ शान्ति की आशा ?
बरसों नित भूखों मरना
मत समझो खेल - तमाशा !

वृक्षों की छाल चबा कर
पौदों के पत्ते खाकर,
हम कितने दिन काटेंगे
घूरों से गुठली लाकर ?

मत फेंको पत्तल प्यारे !
यह श्वान खड़े हत्यारे !!
दो-चार दिवस जी लेंगे
इन से यह बाल हमारे !!!

रूखे-सूखे टुकड़े भी
भर-पेट कहीं हम पाते,
मुर्दार मांस खाकर क्यों
इस तन को कब्र बनाते ?

× × × ×

भड़का कर गृद्ध भगा दो
खा लें यह मांस न सारा !
मर गया अचानक आकर
यह बैल बड़ा बेचारा !!

कुछ बड़ी - बड़ी कुछ छोटी
पतली कुछ मोटी - मोटी,
सपने में हम ने खायीं
अः आज अनेकों रोटी !!

× × × ×

मैं मार मार कर हारी
चुप चाप न फिर भी सोता,
पी गयी माड़ मंजारी
यह बाल इसी से रोता !

दुख - दैन्य प्रबल प्रकटा कर
दुर्बल दिखते जाओगे,
बस करो 'करुणा' ! यह गाथा
कब तक लिखते जाओगे ?

अपने में इसे समेटे
गति कहाँ कवित - गागर की ?
कब थाह किसी ने पायी
इस संकट के सागर की ?

× × × ×

वह भारत - ग्राम गुणीले !

लग रहे लता - तरु - तल में
घर - द्वार भले भड़कीले,
नन्दन - बन व्यर्थ बताते
वह भारत - ग्राम गुणीले !

× × × ×

वह वास भला मन - भाया
वह वर वृक्षों की छाया,
चहुँ ओर उगी सस्यों का
वह कल कालीन बिछाया !

वह कोठे - अटा - अटारी
जव - गेहूँ - भरीं बखारी,
वह भूसा - भरे भुसौले
सुख - साज - सजे नर - नारी !

—तमसा

भरपूर पटे पानी से
वह प्याऊ और जलाशय,
सुख - सुविधा देने वाले
वह अतिथि जनों के आश्रय !

वह जंगल घास घनी के
वह बंजर - बाग - बगीचे,
बहु गोचर भारी - भारी
वह स्वादर ऊँचे - नीचे !

वह त्योहारों का आना
नव - जीवन - ज्योति जगाना,
आबाल - वृद्ध - वनिता में
उत्साह - उमंगें लाना !

वह प्रेम परस्पर भारी
सौजन्य जनों में जारी,
निर्मलता के नातों से
आबद्ध सभी नर - नारी !

सम्मान - भरी सुविधा से
आतिथ्य अतिथि का पाना,
अभ्यागत के स्वागत में
श्रद्धा के सुमन सजाना !

आपस के अभियोगों का
पंचायत से तय पाना,
परमेश्वर के सम सच्चा
पंचों को समझा जाना !

श्रमकारों की सेवा का
ममता - मय मूल्य चुकाना,
वह निश्चित भाग उपज का
सिक्कों के बदले पाना !

'गृह'-'शिल्प - कला - कौशल में
ग्रामों का गौरव गाना,
सौ - सौ गज़ के थानों का
छल्लों में छिप छिप जाना !

× × ×

पशु - पालन में पटु भारी
गौवर्द्धन के गुण - धारी,
'उपनन्द' और 'नन्दों' की
पदवी वह प्यारी प्यारी !

गौ - रस की धार बहाना
गौ - व्रज का विभव बढ़ाना,
उन भव्य भले स्थानों का
वह 'नन्दग्राम' पद पाना !

दर्शनी - दिव्य वह गायें
भैंसें वह भारी भारी,
हाथी से होड़ लगाते
वह बैल बड़े बल - धारी !

× × ×

आये दिन उत्सव आते
छवि - छटा अनूपम छाते,
सरितायें और सरोवर
सुषमा से खिल खिल जाते !

आये दिन लगते रहते
वह दंगल और अखाड़े,
आनन्द अमित उपजाते
बजते जब ढोल - नगाड़े !

पावस की रिम - झिम झड़ियाँ
वह झूले और हिंडोले,
ऋतु - राज रसिकता ला कर
नित नयी सुघरता घोले !

सात्विक सूत्रों से सब का
रक्षा - बंधन में बँधना,
विजयादशमी के दिन से
विजयी भावों में बहना !

रस - रंग - भरी होली का
कुल एकाकार कराना,
अंधेर दिशा - विदिशा का
दीपावलि से छिप आना !

गम ग्रीष्म हटाते रहते
भरते नव जीवन जाड़े,
पावस प्रमोद उपजाते
कर एक बरोठे - बाड़े !

आमों की मंजरियों में
भ्रमरों का गुन - गुन गाना,
वन - बाग लता - तरुवर का
वासन्ती साज सजाना !

कल कुहू - कुहू कोकिल की
अमराई की मर-मर में,
'पिउ कहाँ ?'—पपिहरा पूछे
आमोद भरे घर - घर में !

—तमसा

शुभ सरसौहें खेतों में
सरसों ने चादर तानी,
चहुँ ओर लसी अलसी से
नीलम ने लघुता मानी !

नारियल कहीं कदली की
कटहल की कहीं कतारें,
बहु अम्ब - कदम्ब दिखाते
बढ़ बढ़ कर कहीं बहारें !

कोसों के बीहड़ वन में
फूले पलास अति प्यारे,
मृग - मोर बिभोर बनाते
नर्तन कर साँझ - सकारे !

× × ×

अमराई में आमों के
जब नवरोज़े लग जाते,
मानव की कौन चलाये
पशु - पक्षी भी उकताते !

'जोगिया' कहीं 'सिन्दूरी'
'मालदा' कहीं 'लँगड़ा' है
'माधुरिया' कहीं मधुर हो
मधु - मिश्री से झगड़ा है !

× × ×

चौहट्टे - हाट यहाँ के
वन - बीहड़ - बाट यहाँ के।
उत्साह - भरे सुख - पूरे
प्रिय पनघट - घाट यहाँ के !

× × ×

हो उठी हलों की हलचल
हलवाही की हेला में,
बैलों के घन - घन घंटे
बज उठे ब्राह्म - बेला में !

बिन हाँके बिन ततकारे
जा रहे हराई भरते,
उन बैलों के वर्णन में
मुँह थकें बड़ाई करते !

नारियाँ यहाँ रस घोलें
चक्की - संगीत सुनाकर,
नर वहाँ हृदय हरषाते
बिरहा - बिहाग बहु गाकर !

—तमसा

घम्मर - घम्मर की गत पर
मटकी में चली मथानी,
अब दही बिलोने बैठी
कर्मठ किसान की रानी !

× × ×

पाया विराम बैलों ने
दिन चढ़ा बाँस भर ज्योंही,
पकवान पुये - पूरी का
आ गया कलेवा त्योंही !

दोपहर न होने पायी
हो चुकी जोत मनभायी,
सुखमय - सुरम्य सारों में
बैलों ने सानी खायी !

भोजन कर इधर नरों ने
विश्राम किया मनमाना,
नारियाँ उधर ले बैठीं
चरखे का ताना - बाना !

वह चले मलारें गाते
बंजर में बैल चराने,
यह पनघट की पारों पर
जा पहुँचीं सौख्य सजाने !

शिक्षालय की शिक्षा से
छात्रों ने छुट्टी पायी,
कुछ खीर-मलाई खाकर
गलियों में धूम मचायी!

× × ×

नित नये राग-रंगों में
नित नूतन त्योहारों में,
बहते ग्रामीण गुणीले
सुख-सुविधा की धारों में!

नित नयी उपज उठ उठकर
खलिहानों से घर आती,
नित नयी सस्य सुखदायी
खेतों में बोयी जाती!

विश्वास उन्हें वर्षा का
पर वह पुरुषार्थ-पुजारी,
सिंचन के लिये सभी ने
कर लिये जलाशय जारी!

नदियों में बाँध बँधे हैं
नहरें भरपूर भरी हैं,
सर-सागर से, झीलों से
मीलों तक भूमि हरी है।

दुष्काल कहाँ दिखलाते
इन से अकाल अकुलाते,
इस 'कहत' और 'किल्लत' का
कोषों में नाम न पाते !

खाते सुखाद्य वह सुख से
सीमित सुकाम नित करके,
क्यों आयु न ऊँची पाते
निर्भय भावों से भरके ?

रक्षक से रोश न उन पर
शासक से कोप न उन पर,
दुनिया के दुख-दुर्गुण का
कुछ भी आरोप न उन पर।

दशमांश उपज का देकर
जब वह राजस्व चुकायें,
किन की मजाल है जग में
जो उन को आँख दिखायें ?

जनतंत्र जगत का जितना
उन ग्रामीणों में देखा,
हम से कंगाल कलम के
कर सकें कहाँ वह लेखा ?

× × × ×

यह ग्राम नहीं, घूरे हैं !

जब था वह वैभव भारी
वह बीती बात पुरानी,
क्या कहने चला करुण ! तू
उन की वह अकथ कहानी ?

तब थे ग्रामीण गुणीले
अब हैं 'गँवार' अज्ञानी !
जो विश्व-विजेता तब थे
अब हीन, पराश्रित प्राणी !!

सुख-साज भरे भवनों में
रस-रंग जहाँ थे जारी,
धुँधुवाती ज्वाल-जठर के
अब हैं मसान वह भारी !

जलते थे जाकर जिन में
दुख-शोक शलभ सम सारे,
रस-हीन विलीन व्यथा में
वह ग्राम-प्रदीप हमारे !

दुख - दैन्य भरे घर - बाहर
पर - वशता परि - पूरे हैं !
क्या इन का चित्र उतारें
यह ग्राम नहीं घूरे हैं !!

× × ×

मल - मूत्र - भरे परनाले
बज - बज कर बहते रहते !
ग्रामों की करुण कहानी
रो रो कर कहते रहते !!

दिखते हैं लोट लगाये
ढचरे कुछ साँझ - सकारे,
दुख - दैन्य दबाकर सोये
ज्यों दारिद के दल द्वारे !

'हा भूख - भूख !' का भारी
बज रहा जहाँ नक्कारा !
क्या आज यहीं उतरा है
दुख - दैन्य सजग हो सारा ?

क्यों नर्क निगोड़े कह कर
ग्रामों का गर्व घटाते ?
पापी को कष्ट वहाँ हैं
निष्पाप यहाँ दुख पाते !!

उपमा मसान की देकर
क्यों ग्रामों को कलपाते ?
निर्जीव वहाँ जलते हैं
यह जीव सजीव जलाते !!

तुम अमृत इसे बताते
हम कहते यह हत्यारा,
दूना दुख - द्वन्द्व बढ़ाता
यह निरुज निवास हमारा !

जलवायु ! न तुम जल जाते ?
जठराग प्रबल प्रकटाते !
तुम सम घालक है कोई ?
क्यों पालक तुम्हें बताते ?

क्या बकता वैद्य अनारी
बहु बार पकड़ कर नारी ?
जो खाते पच पच जाता
यह एक हमें बीमारी !

तुम वैद्य बड़े बल - धारी
हम पैयाँ पड़ें तुम्हारी,
वह औषध हमें बता दो
यह भागे भूख हमारी !

भर - पेट न भोजन पाया
बीते पन्द्रह पखवारे !
जिजमान ! जुगों जुग जीवो
नित हों यह श्राद्ध तुम्हारे !!

× × × ×

देशी हो, या कि विदेशी
कुछ भी न हमारा जाना,
हम तो स्वराज्य समझेंगे
भर भूख मिले जब खाना !

× × × ×

कानूनों के बंधन में
तुम कहते हाकिम सारे,
हम को तो 'लाट' यहीं हैं
यह चौकीदार हमारे !

ढेलों में ढल ढल कर जो
उपजें सोने के दाने,
मिट्टी के मोल बिकाते
बाजारों में बेगाने !

हे सखे ! सुदिन वह बीते
    जल माँगें पर पय पाया,
        अब छाँछ कहीं मिल जाये
            समझो ज्यों अमृत आया !

'ताले न लगें द्वारों में'
    यह कथा अकल्पित माने ?
        दो - दो आने पर दिन में
            जा रहीं जहाँ अब जाने !!

×   ×   ×   ×

सुर - धेनु चलीं गोचर को
    जिन भवनों से सुख पाकर,
        कुछ डाँगर - ढोर खड़े हैं
            दिल की अब सार सजा कर !

आतिथ्य यही क्या कम है-
    कम हैं उपकार हमारे-
        घर - भीतर तुम्हें टिका कर
            उतरा लें वस्त्र न सारे !

×   ×   ×   ×

निज लोटा - डोर दिला दें
यदि चाहो चिलम पिला दें,
आतिथ्य यही अब अपना
पड़ना हो प्यार बिछा दें !

× × × ×

लटके हैं कमर झुकाये
कब के यह छप्पर - छानी,
झरने - से झर - झर झरते
ज्यों ही कुछ बरसा पानी !

अटके हैं ऊपर उन के
लक्कड़ कुछ मोटे - झाड़ !
यह बास मरे मानव के
अथवा शूकर के बाड़े ?

अम्बार लगा है इन में
ईंधन - कंडों का भारी,
भूसा भरने को भीतर
बनती हैं यहीं बखारी !

बिच्छू का बास यहाँ है
साँपों का त्रास यहाँ है,
किस लिये करुणा जी ! कहते
कुछ भी न सुपास यहाँ है ?

हिल हिल कर टक्कर खाते
मिट्टी के पात्र पुराने,
मकड़ी ने मुख में जिन के
पूरे कुछ ताने - बाने !

आँगन के बीच बहा है
सदियों का यह परनाला !
दुर्गंध बढ़ा कर जिस ने
लाखों कीड़ों को पाला !!

पुरखों की पुण्य चिन्हारी
यह एक बची बस थाली,
रखती है इसे छिपा कर
जैसे - तैसे घर वाली !

× × × ×

झूले सम झोंका खातीं
दो - तीन पुरानी खाटें,
नख - दाँत न इन के कोई
फिर भी यह क्योंकर काटें ?

पिचके - कुछ टूटे - फूटे
पीतल के पात्र पुराने,
सम्पत्ति यही इस घर की
हल - धर के यही खज़ाने !!

× × × ×

पसरे बहु पात पुराने
सड़ - गल कर गन्द बढ़ाते,
यह महामृत्यु के घर हैं
क्यों ग्राम इन्हें बतलाते ?

पथ पथ कर उपले - कंडे
उपड़ौर उठे हैं भारी,
बसते कुछ बिच्छू जिन में
रहते कुछ सर्प सुखारी !

जिस गोबर से बनता था
खेतों का खाद निराला,
ईंधन की जगह जला कर
उस को स्वाहा कर डाला !

घर - घर के करकट - कूड़े
पोखर के पास पड़े हैं,
क्या जाने किस आशा में
शूकर कुछ वहाँ खड़े हैं !

घूरों की घास घिनौनी
पोखर में बह बह आती,
नित बास बुरी फैलाकर
कीड़ों का वंश बढ़ाती !

यह घोर घिनौना पानी
पशुओं को पीना पड़ता !
इस में ही लोट लगाकर
भैंसों को जीना पड़ता !

लाकर कपड़ों की लादी
धोबी इस में धो जाते,
मल - मूत्र इन्हीं में धुलता
इन में हम सभी नहाते !

क्या बीत रही पशुओं पर
पीकर यह पंकिल पानी,
यह कौन किसे समझाये
किस की यह बात न जानी ?

× × ×

वह गौधन हाय ! हमारा—

किस का बल - पौरुष पाकर
था देश कभी सुखशाली ?
किस के प्रताप से पायी
उस ने वह शक्ति निराली ?

किस की ममता - माया से
था यहाँ न कोई दुखिया,
धन - धान्य भरापूरा था
सब थे निरोग सब सुखिया !

किस की अनुकम्पा पाकर
यह स्वर्ग - देश कहलाया ?
दुष्काल और दुर्दिन में
रहती थी किस की छाया ?

घृत - दुग्ध - दही - मक्खन की
किस ने ध्रुव धार बहायी ?
किस माता की महिमा से
मुख पर वह लाली छायी ?

शुभ शोभा - भरे वदन थे
चमकीले - तगड़े तन थे,
उत्साह - उमंगों वाले
ऊँचे - उज्वल जीवन थे !

× × ×

वह धौरी - धूसर - श्यामा
वह कामधेनु धनधारी,
वह सुरभी सुखद सलोनी
गौ माता पावन प्यारी !
वह मोदमयी ममता - सी

वह कल्प - लता हितकारी,
प्रिय पुण्य पयोधर वाली
वह अम्बा वह महतारी !
अम्बा की आस अनूठे

बछड़े वह भूरे - भूरे,
वह बछियाँ विपुल कलोरें
वह बैल बड़े बल - पूरे !

वह खोवा - खीर - मलाई
रबड़ी - पकवान - मिठाई,
शुभ सात्विक भोजन भारी
वह चोपर वह चिकनाई !

× × ×

चर चर कर गोचर - वन से
बोझिल हो अहा ! अयन से,
वह पागुर करतीं आतीं
मातायें मंजुल मन से !

उन का वह रम्य रँभाना
बछड़ों के लिये बँबाना,
घन - घन घन्टों के स्वर का
वह अम्बर में छा जाना !

उस गोधूली बेला में
उन का वह धीरे चलना,
बाँ - बाँ करते बछड़ों का
माता के लिये मचलना !

गोशाले के द्वारों पर
वह मेला - सा लग जाना,
भर मोद मटकियाँ लेकर
वह गोपालों का आना !

वह घर्र्म - घर्र्म स्वर में
भारी मटकी भर लेना,
बछड़े वह रूठ न जायें
भर भूख उन्हें भी देना !

'प्यासे न पथिक फिर जायें
जल माँगे पर पय पायें,
हाँ, कौन कभी गौरस की ?'
घर घर यह - शब्द सुनायें !

× × × ×

जिन के थन वह पय पाया
जिन के बल बिभव बढ़ाया,
वह गौधन हाय ! हमारा
खूँखार खलों ने खाया !!

वह धौरी - धूसर - श्यामा
वह कामधेनु कल कामा,
क्रूरों के कौर हुई हैं
सुरभी वह ललित ललामा !!

गौवंश गँवा कर अपना
हमने जो बिपद् बुलायी,
लेखनी ! लिखेगी कैसे
वह करुणा कथा दुखदायी ?

हे धरती ! तू फट जाती
हम तेरे गर्त समाते !
गौधन का नाश निराला
क्यों देख देख दहलाते !

जिस माता की महिमा से
वह सुख - साधन थे सारे,
हा हन्त ! उसी के ऊपर
अब चलें कुल्हाड़ी - आरे !!

जिन के विराट वैभव से
गौरस के बहे पनारे,
रक्षक से भक्षक बन कर
खा रहे उन्हें हत्यारे !!

जिसकी छाया के नीचे
थीं सुख - सुविधायें सारी,
उस माता के मिस मानो
मारी यह रीढ़ हमारी !!

× × × ×

नित लाख - लाख गौवों का
वध करते वह हत्यारे !
'गोबर - गन्नेस' बना कर
पूजें हम साँझ - सकारे !!

नित कटें कलोरें कितनी
उस 'क्रोम' चर्म के कारण,
जिस को धारण कर करते
हम गौरक्षा - व्रत धारण !!

जिस का दधि - माखन खा कर
खुल खेले कृष्ण कन्हैया,
कट रही न जाने कब से
हा हन्त ! वही वह गैया !!

वह मन - मोहन की मैया
वह ग्वाल - गणों की गैया,
हतभाग्य ! उसी के घर में
अब काटें उसे कसैया !!

वह मंजुल मुखड़ों वाली
वह बाँके बछड़ों वाली,
कल कुंजों की छाया में
अब करती कहाँ जुगाली !

× × × ×

यह डाँगर - ढोर हमारे !

करते क्या क्या न कमाई
यह मूक मित्र सुखदायी,
इन के गौरव की गाथा
क्या कुछ न कहोगे भाई ?

दे. रहे इन्हें दुख भारी
सदियों से हम हत्यारे !
निर्मूल न क्यों हो जायें
यह डाँगर - ढोर हमारे !

कितना यह नित्य कमाते
सुख - साधन एक न पाते !
क्या शाप इन्हीं का भारी
हम परवशता में माते !!

विकराल वनों में बस कर
वन - जन्तु सुखी हैं सारे,
यह बस्ती में दुख पाते
बन बन कर बंधु हमारे !!

× × ×

भरता न उदर भूसे से
दिन - रात जुतें बिन पानी !
गौ - ग्रास खली - सानी की
क्या पूछो करुण कहानी !!

मल - मूत मिले कीचड़ की
पोखर - सी सार बनी है,
पड़ रही महावट भारी
अन्धेरी रात घनी है !

थर - थर - थर काँप रहा है
यह बैल बँधा बेचारा !
पर - वशता की पीड़ा का
कितना निकृष्ट नजारा !!

× × × ×

हल खिंचा खिंचा कर हम से
हर ली वह हरी जवानी !
हा हन्त ! बुढ़ापा पाकर
मैं मरता हूँ बिन पानी !!

कर कठिन कलेजा कितना
खींचें हम धूरा - गाड़ी,
खूराक मिले हा ! हम को
फिर भी यह मोटी - माड़ी !!

अरई को अड़ा अड़ा कर
पुट्ठों पर घाव बनाये !
भिन - भिन करती मक्खी ने
कीड़ों के वंश बढ़ाये !!

अधिकार मिला यह तुम को
मनमानी मेहनत लेना,
नित काम कठिन करवा के
कम से कम चारा देना !!

यों गर्दन बाँध हमारी
हम को यदि कष्ट न देते,
क्यों पर - वशता में पड़ कर
गल - हार गुलामी लेते !!

सत्वर स्वराज्य पाने को
तुम करते मारा मारी,
हम हीनों पर क्यों लादो
यह पर - वशता हत्यारी ?

क्यों इस की खाल फटी है
क्यों इस की देह लटी है ?
कोई न किसी से पूछे-
क्यों इस की पूँछ कटी है ?

× × × ×

कानून इन्हें क्यों कहते ?

छीना - झपटी के जिन में
पग - पग पर फन्दे डाले,
कानून इन्हें क्यों कहते ?
यह यमदूतों के जाले !

धींगा - धींगी से जिनकी
कटते कृषकों के कंधे,
कानून इन्हें क्यों कहते ?
यह तो धनिकों के धंधे !

जिन के कुचक्र में पड़ कर
मरते कित बेकस बन्दे,
कानून इन्हें क्यों कहते ?
यह तो फाँसी के फन्दे !

चाँदी के चन्द टकों से
मिल जाती जहाँ गवाही,
फल - फूलों की डाली से
खिल जाती नौकरशाही !

—समता

जिस के वकील - बैरिस्टर
झूठे को सच्चा कर दें !
नित नयी नज़ीरें देकर
पक्के को कच्चा कर दें !!

जिन की छाया के नीचे
यह हाहाकार मचा है,
निज कड़ियों में कसने को
क्रूरों ने जिन्हें रचा है !

मिल जाता न्याय जहाँ से
फ़र्ज़ी - गवाह के बल पर,
सदियों से मूँग दलें जो
दुखियों के वक्षस्थल पर !

धनियों की जिस में चाँदी
निर्धनियों का दीवाला !
कर्मी किसान को जिस ने
कंगाल - कुली कर डाला !!

श्रमिकों के जहाँ न संगी
कृषकों के जहाँ न साथी,
धनिकों के लिये बँधे हैं
जिन के कुल घोड़े - हाथी !!

पूँजी - पतियों के पर है
नौकरशाही के शर हैं,
जो अपनी रकम गलाते
उन की खाला के घर हैं !

जब से जनता को भायी
यह भूल - भुलैयाँ भारी,
भाई - भाई के भीतर
नित रहें मुकद्दमें जारी !

'अ' आओ 'दा' दे डालो
'ल' लड़ लड़ कर मर जाओ,
कह रही 'अदालत' कब से
'त' तसला बहुरि बजाओ !

यह फूट फौजदारी की
किस को न पड़े नित खानी ?
किस का न कलेजा काटे
दीवाना कर दीवानी ?

× × × ×

कानूनों को कटुता ने
प्रिय पंच - प्रथा को तोड़ा !
कानूनों के चक्कर ने
कृषकों का रक्त निचोड़ा !!

—तमसा

अभियोगों की भट्ठी में
भुन रही जहाँ की जनता,
फिर क्यों न फले - फूलेगी
नित नयी वहाँ निर्धनता ?

× × × ×

श्रमकार - कृषक - शासन का
कानून कहाँ वह प्यारा !
बटमारों के बंधन का
जंजाल कहाँ यह सारा !

वह पंच - प्रथा सुख - शाली
यह लूट - खसोट न खाली ?
वह साम्य - सुधा से सींची
यह राज - तंत्र की ताली ?

× × × ×

यह व्याधि बुरी बेकारी !

कर रही न जाने कब से
किसनों के तन की ख्वारी,
क्या क्या न अनर्थ कराती
यह व्याधि बुरी बेकारी !

इस के सम कौन कहाँ है
उर - अन्तर की बीमारी ?
चिर चिन्ता से सुलगाती
यह व्याधि बुरी बेकारी !

दानवता की महतारी
मानवता की हत्यारी !
सुख - साधन - हीन बनाती
यह व्याधि बुरी बेकारी !!

× × × ×

तन - मन - धन सभी लगा कर
दर - दर के बने भिखारी !
बी० ए० की पदवी पाकर
वरदान मिला बेकारी !!

कुत्ते तक आज किसी के
बेकार न फिरने पाते,
हम होकर शिक्षा - शाली
बेकार बने बिलखाते !!

× × × ×

श्रम करने से न घिनाते
संकोच न मन में लाते,
दर - दर की ठोकर खाते
पर काम न कुछ भी पाते !

बेकारी के क्रन्दन का
हा ! अन्त न अब तक आया !
वसुधा का बोझ बढ़ा कर
जन - जीवन व्यर्थ बिताया !!

किस किस को दाँत दिखायें
हम काम न कुछ भी पायें !
चित करें संखिया खाकर
अब चुपके से सो जायें !!

धनि धनि हे रस्सी रानी !
हम तुम को गले लगाते,
बेकारी से बल पाकर
चिर जीवन लेने आते !!

चल सका न कोई चारा
हट सकी न यह बेकारी !
अब दूर करेगी इस को
गोली अफ़ीम की भारी !!

× × × ×

बेकार कहाँ तक बैठें
सरकार ! तुम्हीं बतलाओ ?
हम दस्यु नहीं दुखिया हैं
क्यों व्यर्थ हमें धमकाओ ?

सन्मान किया मनमाना
प्रकटाकर प्रेम पुराना,
उठ उठ कर भीतर भागे
बेकार हमें जब जाना !

 —समस्त

क्या 'कर्म' - कथा ले बैठा
सुन सुन रे पंडित पापी !
बेकारी का कारण है
धन की यह आपा - धापी ।

'कलिकाल तुम्हें कलपाता,
तक़दीर तुम्हारी खोटी'
बकवाद यही बेढंगी
छीने कितनों की रोटी !

कर रहे विदेशी बनियाँ
जब तक यह शोषण भारी,
सामर्थ्य किसे है इतनी
यह दूर करे बेकारी ?

पूँजी के ऊपर जब तक
अधिकार व्यक्तिगत जारी,
हो दूर कहाँ से भाई !
यह व्याधि बुरी बेकारी !

मिट जाते यदि यंत्रों के
यह अनियंत्रित अधिकारी,
फिर से न फूलती - फलती
यह व्याधि बुरी बेकारी !

× × × ×

ब्यौहार बुरा ब्यौहर का !

कल कौंसिल की सीटों से
कब जाल हटे ब्यौहर का ?
ग्रामों में गूँज रहा है
ब्यौहार बुरा ब्यौहर का !

विस्तार ब्याज - बाढ़ी का
संहार करे घर - घर का !
किस ने न सुना - समझा है
ब्यौहार बुरा ब्यौहर का ?

सत्तर दे सौ लिखवाये
बहु बाढ़ी - ब्याज बढ़ाये !
हा हन्त ! सभी देकर भी
हम अन्त न ऋण का पाये !!

—तमसा

भरता न बही - खाते में
बाकी का खप्पर खाली,
क्यों कहें 'महाजन' इन को ?
यह महा महा 'जम' जाली !

कितना ही नित्य चुकाते
हम पार न ऋण का पाते,
पांचाली - चीर हुआ है
यह जाली ब्याज बिधाते !

हम अक्षर - हीन अभागे
यह ब्याज - बही क्या जानें ?
वह चक्कर - बृद्धि बता कर
बाकी रखते मन - मानें !

× × × ×

बल - हीन विकल कर डाला
बनियों की बटमारी ने,
हा ! भिक्षुक हमें बनाया
ब्यौहर की बदकारी ने !!

कुछ कंथड़ फटे - पुराने
कुछ बासन् झाँझर - झीने,
कुड़की का स्वाँग सजा कर
कुड़काये आज किसी ने !

हम हीनों का दुनिया में
कुछ ठौर ठिकाना कर दें,
पैसे द्वारा पैसे का
यदि बन्द कमाना कर दें !

इस ब्याज तथा बाढ़ी का
कुछ निश्चित नियम बना दें,
यह बोझ बुरा बेढंगा
हम पर अब और न लादें !

यह आगे और मोगलिये
यह ब्यौहर और महाजन,
बन बन कर जौंक जुटे हैं
जिन को शासन का त्रास न !

× × × ×

यह भव्य भारती भामा !

यह काली - सी कल कामा
लक्ष्मी - सी ललित ललामा,
यह मैना - सी मतवाली
यह भव्य भारती भामा !

यह क्रान्ति - कला - विस्तारिणि
दुर्गा - सी दुष्ट - विदारिणि,
यह वज्र - अनित जड़ता - सी
कलिका - सी कोमल कारिणि !

प्रलयंकरि, पाप - प्रहारिणि
पर - वशता - ताप - प्रतारिणि,
यह विष - वैषम्य - विरोधिनि
शुभ साम्य - सुधा - संचारिणि !

× × × ×

भवती यह भव्य भवानी
कितनों का परवश - पानी !
कर रही न जाने कब से
बेगार विपुल बेगानी !!

यह दीन - हीन मज़दूरिन
मर मर कर मेहनत करती,
अपनी काया कलपाकर
औरों का झोझर भरती !

शासक - सत्ताधीशों के
चंगुल से गिरे, गिराये,
टुकड़े भी यहाँ न रहते
पड़ जाते पेट पराये !

बैठे यह वणिक विदेशी
सदियों से घात लगाये,
इस दीन - दुखी भारत को
अपना बाज़ार बनाये !

वह जो भी वस्तु बनाते
बेबश हो लेनी पड़ती,
अपनी अन्तिम रोटी भी
बदले में देनी पड़ती !

इँगलैण्ड - जर्मनी - इटली
जापान और अमरीका,
जीते हैं किस के धन पर
क्या इन का तौर - तरीका ?

यह लिवरपूल, मंचेस्टर
यह लंका - शहर सजीला,
किस का नित लोहू पीकर
दिखता लंदन दमकीला ?

किस किस का नाम गिनायें !
किस किस का कवित बनायें !
इस दीन देश को दलकर
दुहती हैं दसों दिशायें !!

कुछ दोष नहीं है उनका
हम क्यों उन को धिक्कारें ?
अपनी भारी भूलें क्यों
उन के मस्तक में मारें ?

ले ले कर वस्तु विदेशी
हम आप हुए अविचारी,
क्या खूब कुल्हाड़ी हमने
अपने पैरों पर मारी !!

कह सके किसे साहस है—
बढ़ रही विकट कंगाली,
अरबों की वस्तु विदेशी
खपती है जिन में जाली !

हर वस्तु विदेशी आतीं
यह फैशन हुआ हमारा !
क्यों बंधन की कड़ियों का
विस्तार न हो नित न्यारा ?

× × × ×

कितने करोड़ का कपड़ा
कितने का मद्य मँगाते,
कितने का खाद्य खरीदें
कितने फल - मेवे लाते !!

कितने करोड़ की पूँजी
हम खेल खेल कर खोते,
कितने करोड़ कर स्वाहा
मुख मंजु हमारे होते !

मनिहारी की माया में
कितने करोड़ फुँक जाते !
यह चाकलेट कितने के
कितने के बिस्कुट आते !!

यदि आज यहीं हम चाहें
गोरस की धार बहायें,
बासी विषभरा विदेशी
फिर भी हम 'मिल्क' मँगायें !!

यह कागज़ और किताबें
यह मोटर और मशीने,
कितने करोड़ ले जाते
यह सिल्क और पशमीने !

शृंगार और शोभा की
सामग्री के शैदाई,
कितने करोड़ में पाते
पौडर - पोमेड - मलाई !

कितने करोड़ हम देते
सिगरेट - सिगार जला कर !
बिन काल वृद्ध बन जाते
दुखदायी दमा मँगाकर !!

माना कि अमीरों को ही
इन का व्यवहार बदा है,
यह भार करों का भारी
किसके सिर किन्तु लदा है ?

माना कि विदेशी बनियें
देशी धनियों के संगी,
किन को नित सहनी पड़ती
पैसे की पर यह तंगी ?

विनिमय की नीति निराली
मुद्रा की दर सरकारी,
कर रही दिवाला किस का
यह वंज - व्यवस्था सारी ?

श्रमकार - कृषक वह जिन की
कुछ भी न कहीं सुनवायी,
किस के अदृश्य शोषण से
खोते निज पाई - पाई ?

उन की वह उपज अभागी
मंडी में मारी फिरती !
वह महा मनुज - मर्यादा
व्याकुल बेचारी फिरती !!

विक्रय में वह कम पाते
क्रय में वह बहुत गँवाते !
वह उन के हीरे - मोती
मिट्टी के मोल बिकाते !!

यह भार करों का भारी
श्रमकार - कृषक ने थामा,
शोषण से त्रस्त अभागी
वह भव्य भारती - भामा !

× × × ×

सुखमय स्वराज्य की थाली !

लाखों खल्वाट खड़े हैं
खड़का कर खप्पर खाली,
उतरेगी आज गगन से
सुखमय स्वराज्य की थाली !

× × × ×

सागर के पार पहुँचकर
कितने प्रस्ताव सुनाये,
दर्शन स्वराज्य के फिर भी
हा हन्त ! न हम ने पाये !

केवल स्वराज्य लेने को
क्यों इतनी मार मचायी ?
है जन्म - सिद्ध उस पर तो
अधिकार हमारा भाई !

× × × ×

सुनते हैं 'श्वेत - सदन' से
लाया है यान 'इटाली'
शुभ 'श्वेत - पत्र' से परसी
सौ मन स्वराज्य की थाली !

देखे हम आज नगर में
नेता यह स्वप्न सुनाते—
सुखमय स्वराज्य से लद कर
नभयान अनेकों आते !

× × × ×

तलवारों से कुछ लेते
कुछ लें तोपों के बल पर,
हम तो स्वराज्य ला देंगे
दुश्मन का हृदय बदल कर !

× × × ×

क्या करना सैन्य सजा कर ?
क्या करना रक्त बहा कर ?
हम तो स्वराज्य ला देंगे
गोरों को गले लगा कर !

क्यों हिंसा को हुलसाते
बहु बातें बना बना कर ?
हम तो स्वराज्य ला देंगे
अपना अध्यात्म दिखा कर !

हिंसा की हीन हवा से
ज्यों ही विश्वास बिसारा,
सुखमय स्वराज्य ला देगा
झट 'व्हाइट हाल' हमारा !

बहने दो विह्वल विह्वल कर
अध्यात्म - सुधा की धारा,
सुखमय स्वराज्य लाना तो
तब केवल खेल हमारा !

मत मिल कर नमक बनाओ
उपजाओ धनियाँ - हल्दी ,
सुखमय स्वराज्य पाने की
क्या पड़ी अभी यों जल्दी ?

× × × ×

नित नूतन पुण्य प्रतीची !

आमूल - चूल चित - चाही
विज्ञान - सुधा से सींची,
गुण - ज्ञान मयी महिमा से
नित नूतन पुण्य प्रतीची !

तेरा बल - वैभव भारी
तेरी नागरता न्यारी,
मन मुग्ध न किस का करती
तेरी छवि पावन प्यारी ?

प्राची ने जगत जगाया
पावन प्रकाश प्रकटाया,
सौभाग्य - सूर्य अब उसका
अस्ताचल को चल आया।

क्या गलित यौवना गुनकर
तज प्राची की अभिलाषा,
पश्चिमा - समीप सिधाया
सुख - सूर्य लिये वह आशा ?

—तमसा

जिस ने तुझ को पहिचाना
तेरा अनुमोदन माना,
वह मोह - निशा से जागा
जिस ने तेरा 'गुर' जाना।

जिस ने न तुझे पहिचाना
तेरा अनुगमन न माना,
पद - दलित पड़ा पछताता
बन बन प्राचीन - पुराना।

तेरा अभीष्ट अपनाकर
वह रूस उठा अँगड़ाकर,
है कौन कुशलताशाली
अब उस को आँख दिखाकर ?

कर चूर्ण पुरानेपन का
तुर्की में तुझ को मेला,
कितने कमाल की बाज़ी
ले गया कमाल अकेला !

सभ्यता और संस्कृति की
मृगमाया जिसे न भायी,
उन्नति के उच्च शिखर पर
वह देता आज दिखाई।

नवयुग की नूतनता का
अनुकरण न करके कोई,
इस यन्त्रों की दुनिया में
किस ने निज शक्ति सँजोयी ?

नवयुग के नवल नरों में
उन्नति का दाव लगा है,
प्राचीन चीन पिटता है
जब से जापान जगा है।

विज्ञान बढ़ा जब तेरा
भागा अज्ञान - अँधेरा,
दुनिया में दुबका फिरता
दुखमय धर्मों का डेरा।

ऐ काश ! हमारे घर भी
फैले तेरा उजियाला,
हम भी सत्वर कर डालें
पर - वशता का मुँह काला।

पंकिल परिधान पुराने
केंचुल सम सत्वर त्यागें,
भागें भय से रिपु सारे
काले कुलीन जब जागें !

× × ×

वह युवा - शक्ति अलबेली !

वह चपला की चंचलता
वह पवि की परम प्रबलता,
मिलजुल कर जिस में खेली
वह युवाशक्ति अलबेली !

× × × ×

हिमगिरि को कौन हिलाये ?
सागर को कौन सुखाये ?
लोहे को कौन चबाये ?
यौवन को कौन दबाये ?

आंधड़ को किसने ढाँपा ?
सूरज को किसने चाँपा ?
नाहर को किसने नाँधा ?
यौवन को किसने बाँधा ?

बादल को कौन बटोरें ?
मंदर को कौन मरोड़े ?
तारों को किसने तोड़ा ?
यौवन को किसने मोड़ा ?

चातक की चाह अनूठी
दावा की दाह अनूठी,
आहत की आह अनूठी
यौवन की राह अनूठी !

× × ×

ज्वालागिरि की ज्वालायें
ज्यों अम्बर में इठलातीं,
यौवन की तरल तरंगें
त्यों ताबड़तोड़ मचातीं !

अत्याचारों को चुनकर
सीमा से परे ढकेलें,
मदमस्ती का मद मारें
जब यौवन खुलकर खेलें !

सत्ता के तोप तमंचे
पत्ता-से फट फट जाते,
यौवन की छलक छबीली
जब युवक-हृदय दिखलाते !

बन्दी - जीवन की कड़ियाँ
कड़ कड़ कर काट गिराते,
युवकों के हृदय हठीले
जिस घड़ी जहाँ तुल जाते !

पर-बंधन की पीड़ा को
वह जाति कभी क्या जाने,
माता के लाल जहाँ हैं
अपनी धुन के दीवाने !

दानवता के हाथों से
मानवता तहाँ न मरती,
जन जन की जहाँ जवानी
बन बन कर वीर विचरती !

× × ×

ध्रुव धैर्य हृदय में ला ले
यौवन की आस लगा कर,
लेखनी ! सफलता पा ले
नवयुवकों के गुण गाकर।

जागो दिल - जले जवानो !

परमेश पड़ा सोता है
क्या कह कर उसे उठायें ?
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

अध्यात्म अड़ा चूल्हे में
धर्मों का हुआ दिवाला,
मानव के मन - मन्दिर में
दानव ने डेरा डाला !

नवनीति - निपुणता - नरता
कर चुके किनारा कब के,
कापुरुष - कता - कायरता
रम रही मनों में सब के !

—तमसा

नामर्दों की करनी से
मर्दों की मति बौराई !
मुर्दनी महा मरघट की
हा हन्त ! चतुर्दिक छायी !!

बल - विक्रम के अनुगामी
अब कोई कहीं दिखायें,
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

खुल खुल कर खेल रहे हैं
अब तो यह काया - काशी,
यह जयचन्दों के चेले
हो रहे यहाँ अविनाशी !!

उस पुण्य प्रगति के पथ में
अटका है कब का रोड़ा !
वह भी अब टूट रहा है
जो कभी जतन से जोड़ा !!

स्वातंत्र्य - सुधा, समता से
टूटा अब अपना नाता,
स्वच्छन्द - स्ववश बनने का
विद्रोही देश दिखाता !!

वह भारी भ्रम की भाँगें
अब क्यों हम पियें - पिलायें ?
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

उपचार पुरानेपन के
हम ने न अभी तक त्यागे,
उस मृग - माया के मग में
मरते हम अभी अभागे !

उलझी है नाव हमारी
केवट ने हिम्मत हारी !
वह बगलें झाँक रहे हैं
बनते थे जो बल - धारी !!

× × ×

यह 'पाल' पुराने ले कर
हम बढ़े यहाँ तक आगे,
अब काम न कुछ भी देते
कच्चे - कुसूत के धागे !

लहरों के काल - भँवर में
डर डर कर डूब न जायें,
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

यदि आज न तुम तर पाये
तो कभी न तर पाओगे,
इतना अनुकूल - अनूठा
क्या फिर अवसर पाओगे ?
कर चुका बहुत बुढ़ापा
कुछ उस को सुस्ताने दो,
अब काम जवानी का है
उस को आगे आने दो ।
शोषण का शाप तुम्हीं पर
सत्ता का ताप तुम्हीं पर,
पड़ना है आखिर आ के
सारा संताप तुम्हीं पर !
अरमान न वह रह जायें
अब अपनी कर दिखलायें,
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

यदि आज तपी तरुणाई
निज निश्चय से चूकेगी,
पछताना हाथ रहेगा
दुनिया हम पर थूकेगी !

यह जंग जवानी की है
महिमा मरदानी की है,
कल कीर्ति उसी की होगी
जिस ने कुरबानी की है ।

कुछ काम करें मरदाना
कहता अब यही ज़माना,
जो आज न खुल कर खेला
कल उस का कौन ठिकाना ?

गुण - गौरव की गाथा से
अपना इतिहास लिखायें,
जागो दिल - जले जवानों !
हम तुम को कसम खिलायें !

× × ×

—तमसा

उपहार प्रकृति प्यारी का—

कानूनों की छाया में
कर पेशा बटमारी का
कुछ क्रूरों ने हथिआया
उपहार प्रकृति प्यारी का !

× × ×

किस की यह पृथ्वी प्यारी ?
किस के यह सागर खारी ?
बन - बाग - नदी - नद - नाले
किसके यह पर्वत भारी ?

किस के यह चन्द्र - सितारे ?
ग्रह - उपग्रह न्यारे - न्यारे ?
किसके यह रंग रँगीले
छिटकाता सूर्य सकारे ?

जलधर ने जल बरसाया
धरती ने धान्य उगाया,
उपहार प्रकृति प्यारी का
जग के जीवों ने पाया ।

प्रस्तुत हैं प्रकृति - परी की
यह सुख - सुविधायें सारी,
खाने - पहनें - रहने के
हम सब समान अधिकारी।

कोई न किसी से नीचा
कोई न किसी से ऊँचा,
सब हैं समान संसारी
सब का संसार समूचा।

यह खेत उसी खेतल के
जो धान्य यहाँ उपजाता,
श्रम - साहस के बदले में
उपहार प्रकृति से पाता।

बाज़ार उसी श्रमकर के
श्रम कर जो सृष्टि सजाता,
निज रक्त पसीना करके
नित नूतन वस्तु बनाता।

श्रम - शक्ति लगाकर जैसी
जो जितनी उपज उठाता,
अधिकार उसी का उस पर
वह उस का भाग्य - विधाता।

× × ×

हाँ, आज उपज वह सारी
हर लेता वह हत्यारा,
सम्राट जिसे सब कहते
सत्ता का जिसे सहारा !

कानून अजब यह उसका
वह बैठे बैठे खाये,
आतंक जमाकर अपना
औरों को रहित बनाये !

भाड़े की सैन्य सजाकर
बनता वह वीर विजेता,
नित भेद - भरे भावों से
जनता की जानें लेता !

कहता—तुम प्रजा हमारे
हम शुभ सम्राट तुम्हारे,
तुम पर प्रभुत्व पाने के
अधिकार हमें नित प्यारे।

कहता—तुम करो कमाई
नित अपना रक्त सुखाकर,
हम अपना विभव बढ़ायें
तुम को आतंक दिखाकर।

तम हे श्रमकार - किसानो !
मेरा प्रभुत्व पहिचानो,
अवतार मुझे ईश्वर का
ब्राह्मण के मुँह से मानो ।

× × ×

ब्राह्मण से बैर न करना
पूँजी को पाप न कहना,
यह मेरी सबल भुजाएँ
तुम इन के आश्रित रहना ।

यह मेरी सबल भुजाएँ
बढ़ बढ़ कर मुझे बढ़ायें,
हैं वही कुशलता शाली
जो इन का सौख्य सजायें ।

× × ×

पिस लो हे कृषक - मजूरो !
पीड़न के इन पाटों से,
वरदान यही ब्राह्मण का—
शोषित हो सम्राटों से !

धन - धर्म और सत्ता की
तमसा में ताप न देखो,
पर - वशता की पीड़ा से
पिसने में पाप न देखो !

वैषम्य - व्यवस्था - विष का
सेवन ही सौख्य तुम्हारा
मर मर कर करो कमाई
यह एक बचत का चारा !

यह 'चोर - चोर मौसेरे
भाई' हैं भार तुम्हारे,
यह दानव, या मानव हैं
मानवता के हत्यारे ?

यह महा मनुजता - तन के
त्रासक त्रिदोष दुखदायी,
कितनी न कलह पृथ्वी पर
इन के छल - बल से छायी !

यह विश्व - विपिन के काँटे
यह बेडर डाकू - कपटी,
फल रही फूट के फल से
इन की यह छीना - झपटी !

धन - धर्म सहायक सच्चा
शोषक सत्ताधारी का,
संहार करे सदियों से
उपहार प्रकृति प्यारी का !

× × ×

शोषण की शीर्षक-सूची !

किस काव्य - कला विकला की
संचित कर शक्ति समूची,
मैं आज बनाने बैठूँ
शोषण की शीर्षक - सूची ?

किन भावों में भर भर कर
यह भार उतारूँ उर का ?
वेदना दबाऊँ कब तक
कब तक मन मारूँ उर का ?

टुक मंद न हो लेखनि ! तू
कुछ और कुसाहस कर जा,
तम - तोम हटे तमसा का
वे भाव अनूठे भर जा !

यह पारावार प्रलय का
यह झाँझर - झीनी नैया,
मैं पार पहुँचना चाहूँ,
अपना बन- आप खेवैया !

—तमसा

तम - तोम क्षितिज पर छाया
परतन्त्र प्रकम्पित काया,
अपना अभीष्ट पथ पाऊँ
वह दीप कहाँ मनभाया ?

विकृत वीणा के स्वर से
वह गीत निकालूँ कैसे ?
विष - भरी सुराही कर में
मैं अमृत ढालूँ कैसे ?

उर के यह घाव घिनौने
हा हन्त ! हरे नित होते !
रो सकूँ कहाँ मनमाना
हैं शुष्क हृदय के सोते !!

इस क्रूर कुटिल कारा में
तन - प्राण तड़पते रहते !
सिर पर हो वज्र - झड़ाका
यदि ओठ खुलें 'उफ़' कहते !!

माता के मंजुल मुख में
यह श्वेतकुष्ठ की छाया !
ज़ालिम की जंजीरों से
जकड़ी वह उसकी काया !!

'सीता' - पति पड़े तड़पते
सड़कों के कोलाहल में !
'हलधर' के प्राण निकलते
पूँजी की चहल - पहल में !!

प्रासादों के प्राङ्गण में
ढल रही उधर मधु हाला,
हो रहा इधर गलियों में
मानवता का मुँह काला !!

लुट रही लाज सतियों की
रोटी के दो टुकड़ों पर !
निर्लज्ज निठुरता छायी
उन अभिमानी मुखड़ों पर !!

खुल ! खुल कर खेल रही है
यह पर - वशता हत्यारी !
वैषम्य - व्यथा हँस हँस कर
भर रही कुटिल किलकारी !!

अपने वह चन्द्र - सितारे
अपने वह लाल जवाहर,
सड़ रहे हाय ! सेलों में
अपने असंख्य नर - नाहर !!

× × ×

 —नमसा

दुखियों से दो-दो बातें

शोषक - सत्ताधीशों की
कुछ कहीं घिनौनी बातें,
अब चलो करुणा जी! कह लें
दुखियों से दो-दो बातें।

× × ×

हे दीन-दुखी दुनिया के
हे भारत के हतभागी,
कंकाल मरे मानव के
हे चेतनता के त्यागी!

दिन-रात कड़ा श्रम करके
हे भूखों मरने वालो!
नित मार खलों की खाकर
हे आह न करने वालो!

नित नीच-अछूत कहाकर
सुख-साधन खोने वालो!
अन्याय सभी के सहकर
दुख-दारिद ढोने वालो!

आपस में वैर बढ़ाकर
बल - वैभव खोने वालो!
सर्वस्व लुटा कर अपना
सदियों से सोने वालो!

घर में भी बेघर बनकर
प्रतिकार न करने वालो!
गलहार गुलामी लेकर
हे डूब न मरने वालो!

किस्मत का खेल समझकर
झाँसे में आने वालो!
कलियुग का धोखा खाकर
पर - वशता पाने वालो!

हे हे श्रमकार किसानो!
अब तो यह निद्रा त्यागो;
हे हे जाँबाज़ जवानो!
जागो जागो अब जागो।

× × ×

जड़ता का जाल हटाकर
हम तुम्हें जगाने आये,
कर्तव्य तुम्हारा क्या है
कुछ तुम्हें बताने आये।

—तमसा

हम घर-घर अलख जगाकर
डंके की चोट कहेंगे,
जो बात हमें कहनी है
कह कर ही आज रहेंगे।

जो बात तुम्हारे हित की
कह देना काम हमारा,
हम राह तुम्हें बतलाते
बढ़ जाना काम तुम्हारा।

जो आप न उठना चाहें
अपने पैरों पर भाई!
उन हीन जनों की जग में
कर सकता कौन भलाई?

× × ×

जो जाग पड़ा हो फिर भी
सोने का स्वाँग बनाये,
सामर्थ्य किसे है इतनी
अब उसको जल्द जगाये?

× × ×

तुम सिंह वही हो जिन को
भेड़ों की खाल उढ़ाकर,
भेड़ों में पोसा - पाला
रख छोड़ा भेड़ बनाकर !

× × ×

तुम आग वही हो जिस पर
धोखे की धूल चढ़ी है,
तुम वज्र वही हो जिस पर
खूसट की खाल मढ़ी है !

तुम महा प्रलय के कर्ता
तुम सर्वनाश के नेता,
समतर है कौन तुम्हारे ?
बलधारी, विश्व - विजेता !

तुम चाहो तो दुनिया में
वह आग अभी सुलगा दो,
इस अत्याचार - अनय को
कुछ दम में दूर भगा दो !

तुम चाहो कर दिखलाओ
वह क्रान्ति अभी मनभायी,
पर - वशता के बन्धन का
यह पाप हटे दुखदायी !

यह विष - वैषम्य हटाकर
वह साम्य - सुधा सरसाकर,
तुम चाहो तो दुनिया को
दिखला दो दिव्य बनाकर।

× × ×

देखो देखो दुनिया में
दुखियों के भाग्य जगे हैं,
सदियों के भूले - भटके
अब अपनी राह लगे हैं।

जो अभी अभी ऊपर थे
वह भूपर पड़े दिखाते,
जो भूपर बिलख रहे थे
अब ऊपर उठते आते।

ऊँचे - नीचे पलड़ों पर
सदियों से सधी तराज़ू,
पासंग हटा अब उसका
बन रहे बराबर बाज़ू।

× × ×

नित नया - नया दुनिया का
इतिहास लिखा जाता है,
जो जैसा कर्तब करता
वैसा शीर्षक पाता है ।

चल रही निरन्तर तब से
दुनिया की करुण कहानी,
अपने अपने हिस्से की
करनी सब को कुरबानी ।

इस जीवन के नाटक में
जिस ने जो अभिनय पाया,
वह उसे अदा करना है
माड़ा हो या मनभाया ।

जिन को निज नाम कमाना
करके कुछ काम दिखाना,
अपने उज्वल जीवन का
जिन को इतिहास लिखाना—

पर - वशता की पीड़ा से
छिलती है जिन की छाती,
गलहार गुलामी लेकर
जिन को कुछ लजा आती—

स्वातंत्र्य - सुधा के हामी
नागरता के अनुगामी,
हाँ, जल्द जिन्हें बनना हो
अपनी प्रभुता के स्वामी-

मजबूर जिन्हें करती हो
कुछ करने की बेचैनी,
जो दूरन्देश कहाते
प्रतिभा है जिन की पैनी-

× × × ×

बातों के बिपुल बतासे
जो खा कर खूब अघाये,
तकरीरें सुनते सुनते
जो अरसे से उकताये---,

सुन सुन रूहानी बातें
झुँझलाहट जिन को आती,
ऊँचे - वजनी शब्दों की
चरचा अब जिन्हें न भाती—

जो सन्त नहीं सैनिक हैं
सैनिकता जिन को प्यारी,
देवत्व नहीं, दुनिया में
देखें जो दुनियादारी—

उन का युग - धर्म यही है
उन का गुण - कर्म यही है—
अब शीघ्र उठें, खुल खेलें,
उन का मग - मर्म यही है ।

× × × ×

क्या एक तुम्हीं हो जिन के
ऊपर यह गाज गिरी है ?
क्या एक तुम्हारे सिर ही
आफत यह निरी - निरी है ?

दुनिया में और जगह भी
ऐसे नाजुक दिन आये,
पर - बन्धन के दल - बादल
औरों पर भी मँडलाये !

औरों को भी औरों ने
ऐसे दुख - दर्द दिये हैं,
औरों के धन - धरती भी
औरों ने हड़प लिये हैं !
क्या किया उन्होंने ? कैसे
अपनी किस्मत को फेरा ?
किस तरह वहाँ से भागा
पर - बन्धन का अन्धेरा ?
तुम को भी करना होगा
अब यत्न वही मन - भाया,
जिस के बल से औरों ने
अपना सौभाग्य सजाया ।
पूँजी का पाप हटा कर
सत्ता का ताप घटा कर,
तुम को सुख सुयश मिलेगा
समता का साज सजा कर ।

× × × ×

यह दुनिया दीवानों की
बलवानों की बस्ती है,
दीवानों के दंगल में
दुर्बल की क्या हस्ती है ?

× × × ×

जय हँसुवे ! जयति हथौड़े !!

पूँजी का पाप खपा कर
मैदान करो चट चौड़े,
समता के सम्बल बाँके
जय हँसुवे ! जयति हथौड़े !

× × × ×

पावन प्रतीक समता के
प्रभुता के नाशक न्यारे,
करवाल कठिन कर्मी के
हठधर्मी के हत्यारे !

प्रिय पंच प्रथा के स्थापक
नित नवल नीति के नेता,
सत्यानाशक सत्ता के
बल - बर्द्धक विश्व - विजेता !

कृषकों की कलित कलाई
जिन का सौभाग्य सजाती,
जिन के हिल भर भर आती
श्रमिकों की निश्छल छाती !

कृषकों का पुण्य पसीना
जिन को नित अर्घ्य चढ़ाता,
श्रमिकों का श्वास सलोना
जिन की गायत्री गाता !

ममता की रक्त पताका
जिन का सम्मान बढ़ाती,
रूसी समाज नित जिन पर
श्रद्धा के सुमन चढ़ाती !

श्रमकारों के सुखदाता
कृषकों के भाग्य - विधाता,
जय हँसुवे ! जयति हथौड़े !
ममता के तारक - त्राता !

× × × ×